ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः

(तत्त्वज्ञान के बिना मुक्ति नहीं)

अभिव्यक्ति एवं प्रकाशक

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यप्रवर

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

वेदान्ताचार्य

।।अनुक्रमणिका ।।

।। मंगला चरण ।।

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत्।।

अर्थ- जिस परब्रह्म का कभी नाश नहीं होता, जो सूक्ष्मतम से सूक्ष्म है, जो संसार के समस्त कार्य और कारण का आधारभूत है, जो सब भूतों का आत्मा है, वही तुम हो, तुम वही हो।

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत्।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रो हं सदा शिवः।।

अर्थ- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीन अवस्थाओं में जो भोग, भोग्य और भोक्ता के रूप में है, उससे भिन्न वह सदाशिव चिन्मय और अद्भुत साक्षी मैं ही हूँ।

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्यम्यहम्।।

अर्थ- मैं ही वह अद्वैत ब्रह्म हूँ मुझमें ही सब उत्पन्न होता, मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित रहता और मुझमें सबका लय होता है।
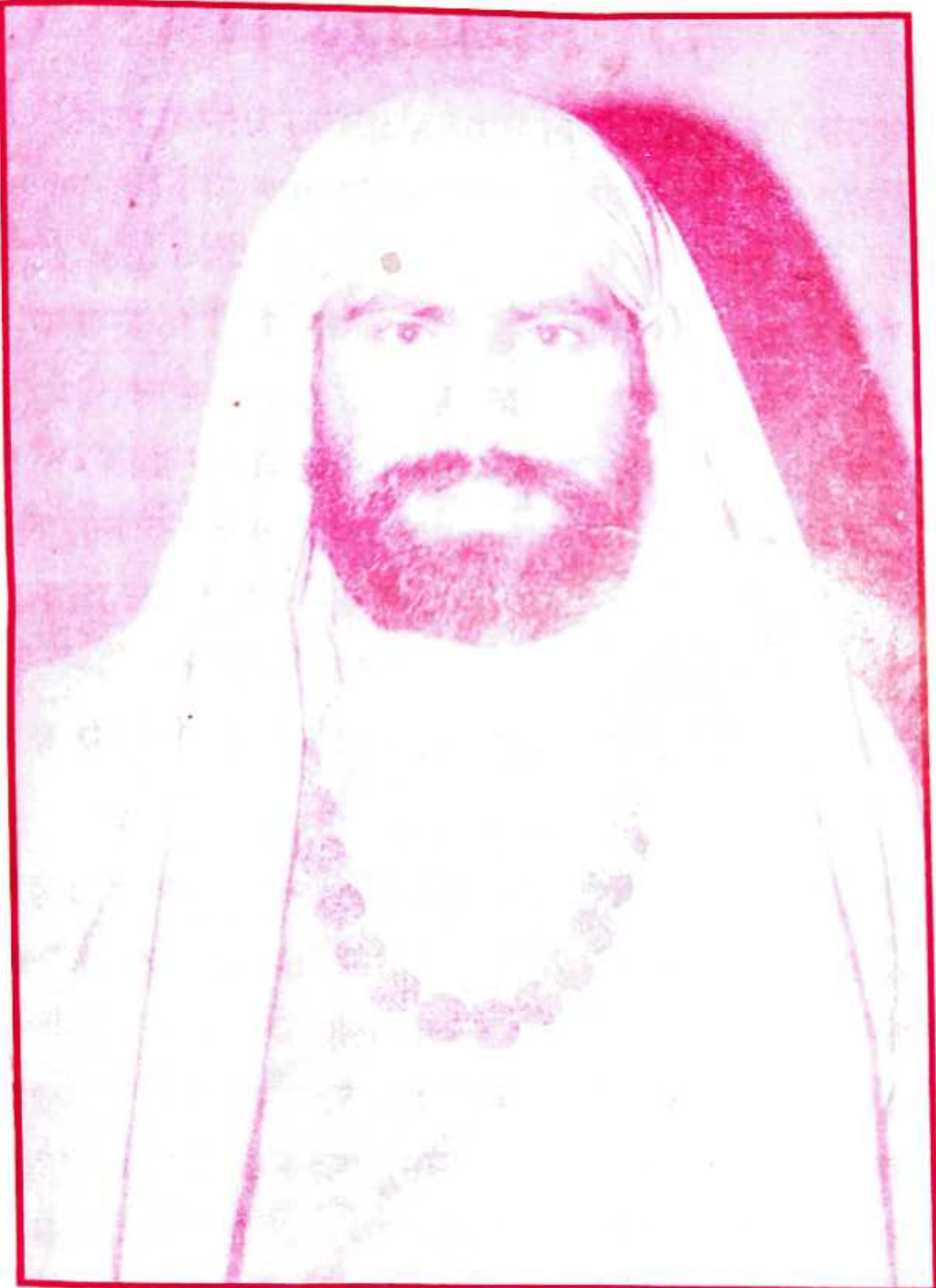
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य प्रवर

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती वेदान्ताचार्य

॥ भूमिका ॥

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' ऋत में किसी ईश्वर की धारणा नहीं है ऋत का अर्थ नियामक तत्त्व नियामक व्यक्ति नहीं नाट परसन बट प्रिंसिपल कोई व्यक्ति नहीं जो नियामक हो कोई तत्त्व जो नियमन किये चला जाता है जैसे बीज से अंकुर निकलता रहता है ऐसे ऋत से ऋतुयें निकलती रहती हैं। ऐसे ऋत से माया और माया का कार्य जगत निकलता रहता है, ऋत माने होता है तत्त्व, ज्ञानान्न मुक्तिः माने होता है ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं अर्थात् तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। तत्त्व ज्ञान होता कैसे है? उपनिषद् कहते हैं कि-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

अर्थ- हे साधको! उठो, जागो श्रेष्ठ महा पुरुषों को पाकर अर्थात् उनके पास जाकर जिन्होंने जाना है, जिन्होंने जिया है, जिन्होंने अपने आपको डुबाया है, फिर उनके अनुभव में आया है, ऐसे अनुभवी सद्गुरुओं के पास जाकर (उनके द्वारा) उस ब्रह्म ज्ञान को जान लो, क्योंकि ज्ञानीजन उस तत्त्व ज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सद्रश दुर्गम बतलाते हैं। कहते हैं कि व्यावहारिक रूप में अभिमान अथवा अस्मिता तथा इगो की निवृत्ति हो जाने पर भी अविद्या महारानी ज्यों की त्यों अपने सिंहासन पर विराजमान रह कर अपने स्वच्छन्द साम्राज्य का संचालन करती रहती है। यहां तक की विवेकख्याति हो जाने पर भी द्वैत भ्रान्ति को अपने पेट में छिपाये

उपयुक्त अवसर पर उसका विस्तार करने के लिए भरी-पूरी बैठी रहती है और समय आने पर कर भी देती है। ब्रह्मात्मैक बोध की प्रचण्ड अग्नि के बिना उनका भस्मी भाव नहीं हो सकता। इसलिए अन्ततोगत्वा उपनिषद् विद्या, वेदान्त ज्ञान अथवा ब्रह्मात्मैक्य बोध की शरण ग्रहण करनी पड़ती है। उसके अतिरिक्त अविद्या की निवृत्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म ज्ञान से अविद्या की आत्यत्तिक निवृत्ति हो जाती है। ज्ञान ही साक्षात् साधन है, अविद्या निवृत्ति ही फल है। इसीलिये श्रुति कहती है- कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं।

।।ॐ।।

दिनांक 27 नवम्बर सन् 2007

पूज्यपाद स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

सादर प्रणाम।

आपने अपनी लिखित पुस्तक ''तत्त्वमसि'' भेजी, उसके लिए अनेक-अनेक धन्यबाद हम लोगों को अपने राजसी काम काज में ऐसे ''तत्त्वमसि'' पुस्तक के अध्ययन का सौभाग्य और समय ही कहाँ मिल पाता है? कभी कुछ समय मिला और कुछ पढ़ा गया तो उसके मनन करने का धैर्य कहाँ? सिद्धान्त की बातें कौन सी सत्य हैं, कौन सी असत्य, यह आप लोगों जैसे विद्वान और पहुँचे हुए सन्त ही ठीक-ठीक समझ सकते हैं। जिस प्रकार हाई स्कूल का विद्यार्थी बड़े-बड़े एम.एस.सी वैज्ञानिकों की बातें समझने में असमर्थ हैं, वैसे ही हम लोग आप लोगों की सैद्रान्तिक बातें समझने में असमर्थ हैं। ज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति के लिए अनेक स्वतन्त्र मार्ग हो सकते हैं? किसी जगह महाभारत का एक श्लोक देखने में आया था यथा-

श्रुतिर्विभिन्न स्मृतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मं तत्त्व निहितं गुहायां महाजनों येन गतः स पन्थः।।

इसके अतिरिक्त शिवमहिम्न का श्लोक देखने में आया यथा

रुचिनां वैचित्र्याद्रजुकुटिल नाना पथ जुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पया सामर्णव इव।।

वेद में लिखा है- यथा- 'स ऐक्षत् एकोऽहं वहुस्यां प्रजायेय क्या ये वेद वाक्य सत्य नहीं है?

ज्ञान मार्ग के सबसे बड़े आचार्य पूज्यपाद आदि शंकराचार्य जी

महाराज का षटपदी स्तोत्र भी देखने में आया यथा श्लोक

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न माम की नस्त्वम्।

सामुद्रो हि तरंगः क्वच न समुद्रो हि तारंगाः ।।

श्री आदि शंकराचार्य जी के षटपदी स्तोत्र के उपर्युक्त अंशों को भी क्या आप उनका भ्रम मानते हैं।? क्या श्रीमद्भागवत में चतुर्विध मुक्ति का वर्णन झूठा है? क्या श्री मद्भगवद् गीता में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण के मुखार विन्द से निकले शब्द 'मैं' 'मेरा' 'मुझे' इत्यादि, अपने स्वयं श्री कृष्ण स्वरूप सगुण साकार रूप के लिए नहीं है? गीता का उपदेश स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को दिया। श्लोक–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्या जी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सतां ते प्रतिजाने प्रियोऽसि।।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,

अहं, त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्जुन ने गीता प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य किया?

श्री मद्भागवत पुराण को क्या आप प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं मानते? यदि प्रमाणिक मानते हैं तो उद्धव जी के ये भाव कि मैं वृन्दावन में कोई झाड़ी लता आदि बन जाऊँ जिससे वृजांगनाओ की चरण धूली मुझ पर पड़ती रहे दशम स्कन्ध श्लोक 47

आसामहो चरणरेणु जुषा महं स्यां।

वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।।

क्या श्री मद्भागवत के उपसंहार के अन्तिम दो श्लोक–

भवे-भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।

तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।

अर्थ- देवताओं के आराध्य देव सर्वेश्वर!

आप ही हमारे एकमात्र स्वामी एवं सर्वस्व हैं। अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि बार-बार जन्म ग्रहण करते रहने पर भी आपके चरण कमलों में हमारी अविचल भक्ति बनी रहै। **श्लोक**-

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुख शमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

अर्थ- जिन भगवान् के नामों का संकीर्तन सारे पापों को नष्ट कर देता और जिन भगवान् के चरणों में आत्म समर्पण, सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुखों को शान्तकर देती उन्हीं परम तत्त्व स्वरूप हरि को मैं नमस्कार करता हूँ। क्या ये दो श्लोक श्री मद्‌भागवत में प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध है?

गोपियों की भेद भक्ति क्या पाखण्ड थी? मीरा की कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण प्रेम क्या पाखण्ड था?

क्या नारद भक्ति सूत्र के बचन सब मिथ्या पाखण्ड है? सिद्धान्त के विरुद्ध है? यदि अधिकारी भेद से विभिन्न मार्ग माने जायँ तो फिर यह आग्रह क्योंकि एक ही मार्ग सत्य है?

किसी गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए एक ही मार्ग नहीं होता, अनेक मार्ग हो सकते हैं। दिल्ली से बम्बई जाने को आकाश मार्ग भी है, मोटर से जाने के अनेक मार्ग हैं। ट्रेन से जाने के अनेक मार्ग हैं। किसी किसी भाग्यवान् की क्षमता होती है, जो आकाश मार्ग से एक-दो घन्टों में दिल्ली से बम्बई पहुँच जाता है। कोई-कोई भाग्यवान् मोटर द्वारा मार्ग में अनेक-रमणीय स्थानों का आनन्द लेते हुए कुछ

समय पश्चात् अनेक मार्गों में से किसी भी मार्ग से वहाँ पहुँच सक
हैं। दूसरे ट्रेन के अनेक मार्गों में से किसी मार्ग से थोड़ा बिलम्ब सह
करके वहाँ पहुँच सकते हैं, चाहे तो मार्ग में किसी-किसी स्थान प
उतर कर कुछ समय ठहर कर वहाँ का भी आनन्द ले सकते हैं। ऐ
दूसरों में कोई-कोई तो ऐसे भाग्यवान् हैं, जो एयर कण्डीशन में य
फर्स्ट क्लास में बहुत आराम से पहुँच जाते हैं। और किसी-किसी क
थर्ड क्लास के धक्के खाते जाना पड़ता है, लेकिन पहुँच वे भी जा
हैं। हम लोग ऐसे थर्ड क्लास के धक्के खाते हुए पहुँचने वालों में
हैं, जिनको एयर कण्डीशन या फर्स्ट क्लास में झांकने का भ
अधिकार नहीं। इसके अतिरिक्त जितने अन्य आचार्य हुए हैं, जिन्हों
ज्ञान मार्ग के अतिरिक्त दूसरे मार्गों को स्वतन्त्र मोक्ष मार्ग माना है औ
तर्क से एवं शास्त्रों प्रमाणों से अपने सिद्धान्त की पुष्टि की है, वे भ
उतने त्यागी तपस्वी और निस्वार्थ थे। आप यह कह नहीं सकते हैं कि
-पूज्यपाद श्री रामानुजाचार्य, पूज्यपाद श्री निम्बार्काचार्य, पूज्यपा
श्री वल्लभाचार्य, पूज्य पाद श्री माध्वाचार्य, पूज्यपाद श्री चैतन
महाप्रभु जिन्होंने भक्ति मार्ग की स्थापना की, क्या ये सभी आचार
अल्पज्ञ थे ? कुछ अनुचित लिखा गया हो तो क्षमा करेंगे। क्षमा बड़
को उचित है छोट न को उत्पात।

आपका -कृपाकांक्ष

।। ॐ ।।

श्री अध्यात्म ब्रह्म विद्या
पीठ, वृन्दावन।
दिनांक 10 दिसम्बर सन् 2007

श्री मन्महोदय

सप्रेम नारायण।

आपका कृपा पत्र दिनांक 7 दिसम्बर सन् 2007 को प्राप्त करके मैं कृतार्थ हुआ हूँ। श्री··············नवम्बर के अन्त में यहाँ श्री अध्यात्म ब्रह्म विद्या पीठ में आये थे, उनके द्वारा आप की अध्यात्म प्रियता जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी, और तब उनके द्वारा ही मैंने अपनी **''तत्त्वमसि पुस्तक''** आपकी सेवा में भेंट करने के लिए उन्हें दी थी। उनके पत्र से यह जानकर कि आपने 'तत्त्वमसि पुस्तक बड़े प्रेम से स्वीकार की, मैंने उनके द्वारा ही अपना धन्यबाद आप को सूचित करने के लिए लिखा था। उसी पत्र में मैंने महर्षि श्री वशिष्ठ जी का एक सन्देश भी आप के कर्ण गोचर करने के लिए भेजा था। सम्भव है कि वह सन्देश आप को आप के इस पत्र लिखने से पूर्व न पहुँचा हो। इसलिए मैं अब आपको सीधा ही वह सन्देश आपकी सेवा में निवेदन कर रहा हूँ। महर्षि श्री वशिष्ठ जी अपने ग्रन्थ योगवाशिष्ठ में अपने उपदेश का आरम्भ करते हुए कहते हैं– ''हे राम! युक्ति पूर्वक वचन चाहे बालक का भी हो, उसे मस्तक पर धारण करना चाहिए और युक्ति शून्य वचन चाहे ब्रह्मा का हो उसे सूखे व्रण के समान तोड़ना चाहिए।'' इसी द्रष्टि को लक्ष्य में रखते हुए मैंने अपनी ''तत्त्वमसि पुस्तक'' अध्ययन के लिए आप से उस

पत्र में प्रार्थना की थी। अपने इस पत्र में आपने अपनी मान्यता को स्पष्ट न करके मेरी मान्यताओं का खण्डन ही किया है। फिर भी आप के पत्र से मैंने आप की मान्यता यही ग्रहण की है कि आप मोक्ष प्राप्ति के लिए अनेक मार्ग मान रहे हैं। और उन सबको मोक्ष प्राप्ति के लिए दूसरे किसी साधन की अपेक्षा बिना स्वतन्त्र और निरपेक्ष मोक्ष प्रापक ग्रहण कर रहे हैं। यदि आपकी मान्यता इसके विपरीत कुछ और हो तो आप उसे स्पष्ट करने की कृपा करेंगे। इसके विपरीत वेद-वेदान्त की मान्यता यह है कि मोक्ष केवल जीव-ब्रह्म के अभेद ज्ञान, द्वारा ही सम्भव है। अर्थात् वेद का यह ढिंढोरा है "**ऋते ज्ञानान्न मुक्ति**"। तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। **ज्ञानादेव तु कैवल्यम्**। केवल ज्ञान से ही मोक्ष सम्भव है **नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय**। मोक्ष के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं। **विद्या सः विभुक्तये**। विद्या वही जो मुक्त कर दे। **ज्ञानमज्ञान नाशनम्**। अर्थात् ज्ञान अज्ञान का नाशक होता है, यह नियम है। **तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति**। उस परमात्मा को जानकर विद्वान पुरुष मृत्यु-संसार को पार कर जाता है। इत्यादि। आप के इस पत्र से मुझे ऐसा लगता है कि मेरी "तत्त्वमसि पुस्तक" को इत्तस्तत: देखकर ही अपने विचारों की प्रकटता की है। मेरे विचार से यदि "**तत्त्वमसि पुस्तक**" को आद्योपरान्त मनन करके कुछ लिखते तो वह अधिक आपके और मेरे लिए सन्तोष प्रद हो सकता था। खैर आपने अपने मत की पुष्टि में जो प्रमाण सूचित किये है और आपत्तियां उपस्थित की है, उनके लिए मैं आपका आभारी हूँ। क्योंकि ऐसा करके आप ने परस्पर विचार विनिमय का अवसर प्रदान किया है, जिससे विषय अधिक स्पष्ट और सुद्रढ़ हो जाता है।

शंका ही समाधान की जननी है, यह तो प्रसिद्ध ही है अब प्रत्येक शंका का समाधान किया जाता है-

1. शंका महाभारत के जिस श्लोक का आपने प्रमाण दिया है, वह श्लोक मेरे विचार से शुद्ध नहीं है वह श्लोक इस प्रकार है-

यथा समाधान-

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः सः पन्थाः।।

इस श्लोक में धर्म का निर्णय कैसे किया जाय, इसी विषय को स्पष्ट किया गया है। मोक्ष प्राप्ति के अनेक स्वतन्त्र मार्ग हो सकते हैं, ऐसा किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं होता। इस श्लोक में यही कहा गया है कि न केवल तर्क से, न केवल श्रुति के बचन से और न केवल मुनियों के बचनों से ही धर्म का निर्णय किया जा सकता है। क्योंकि तर्क अनिश्चित है, बुद्धि बल से एक दूसरे के तर्क को काटा जा सकता है। इधर-श्रुतियों के बचन भी विभिन्न है, वे प्रसंगानुसार तथा अधिकारानुसार भिन्न-भिन्न शब्दों में प्रगट किये गये हैं और वे सभी प्रमाण भूत है। तथा ऐसा कोई मुनि नहीं जिसके बचन प्रमाण भूत न हो, (न एकः मुनिः यस्य वचः प्रमाणम्) किन्तु वे सभी प्रमाण भूत है और वे सब बचन भी भिन्न-भिन्न है। अतः केवल उनसे भी धर्म का निर्णय नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में धर्म का तत्त्व केवल शुद्ध सात्विकी बुद्धि रूपी गुहा में निहित है। उस बुद्धि द्वारा तर्क के आधार से श्रुतियों तथा मुनियों के बचनों की एक वाक्यता द्वारा ही धर्म का निर्णय किया जा सकता है, अन्य किसी भी प्रकार नहीं।

2. शंका-शिव महिम्न स्तोत्र का जो प्रमाण आप ने दिया है यथा श्लोक

रुचिनां वैचित्र्याद्रजुकुटिल नानापथ जुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पय सामर्णवइव।।

समाधान- इस श्लोक में यही कहा गया कि हे देव! रुचियों विभिन्नता से सरल अथवा टेड़े नाना मार्गों में जाने वाले पुरुषों की प्राप्तव्य वस्तु एक मात्र तू ही है। जिस प्रकार सब नदियां एक मात्र समुद्र की ओर दौड़ती है, इसी प्रकार पामर-विषयी सभी पुरुष अपने-अपने मार्गों से एक मात्र तुझ सुख स्वरूप को खोज रहे हैं। इस श्लोक से इतना ही स्पष्ट होता है कि सभी प्राणियों की मांग एक तेरे लिए ही है, परन्तु यह तो सिद्ध नहीं होता कि उन सरल और टेड़े मार्गों द्वारा तू प्राप्त भी हो जाता है। उसकी प्राप्ति तो उसके अपने नियत मार्ग द्वारा ही होगी, अर्थात् केवल ज्ञान मार्ग से होगी और कोई उपाय नहीं है।

3. शंका वेद के इस बचन से **''सऐक्षत् एकोहम् वहुस्यां प्रजायेय''** मोक्ष के अनेक मार्ग है?

समाधान- इस वेद बचन का अर्थ यही है कि सृष्टि समय ईश्वर का संकल्प हुआ कि मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ और प्रजा उत्पन्न करूँ। इस मन्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। आश्चर्य होता है कि आप इससे मोक्ष के अनेक स्वतन्त्र मार्ग किस प्रकार सिद्ध कर रहे हैं। 4. शंका ज्ञान मार्ग के सबसे बड़े आचार्य पूज्यपाद श्री आदि शंकराचार्य षटपदी स्तोत्र के उपर्युक्त अंशों को भी क्या आप उनका भ्रम मानते हैं?

समाधान- श्लोक इस प्रकार है-

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरगः क्वच न समुद्रो हि तारगः।।

अर्थ- इस श्लोक में शरणागति की महिमा गायन की गई और शरणागति अभेद ज्ञान के लिए आवश्यक सोपान है। इस स्तोत्र में कहा गया है कि ''भेद निकल जाने पर भी'' अर्थात् परमार्थ से भेद न होने पर हे नाथ! मैं तेरा हूँ तू मेरा नहीं। जिस प्रकार समुद्र की तरंग है, तरंग का समुद्र नहीं। समझ में नहीं आता कि इस श्लोक से आप मोक्ष के नाना भिन्न-भिन्न मार्ग किस प्रकार सिद्ध कर रहे। 5. श्री मद्भागवत में चतुर्विध मुक्ति का शंका वर्णन आप किस प्रमाण से कह रहे हैं- यह आपने स्पष्ट नहीं किया। कृपया उस श्लोक तथा अध्याय, स्कन्ध का प्रमाण देने की कृपा करें, जिससे इस पर विचार किया जाय।

समाधान- हाँ निम्न श्लोक तो मेरी स्मृति में आता है, परन्तु इसमें तो चतुर्विध मुक्ति का खण्डन ही मिलता है, मण्डन नहीं श्लोक यथा

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारुप्येकत्वमप्युत।
दीयमानं न ग्रहन्ति बिना मत्सेवनं जना।।

अर्थ- इस श्लोक में कहा गया है कि यह चतुर्विध मुक्ति दी हुई भी मेरे भक्त मेरी सेवा के सिवा ग्रहण नहीं करते। कृपया देखिये कि इससे आप चतुर्विध मुक्ति का समर्थन किस प्रकार कर रहे हैं? श्लोक में यद्यपि भक्ति की महिमा गाई है, तथापि इसी से कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ऐसा सिद्ध नहीं किया गया।

6. शंका श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् के मुख से निकले शब्द 'मैं'

'मेरा''मुझे' इत्यादि यद्यपि किसी-किसी स्थल पर सगुण-साकार रूप के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं,

समाधान- तथापि विशेषतया उनके निर्गुण-निराकार स्वरूप के अर्थ में ही इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। भगवान् स्वयं अपने सगुण रूप को मायिक मानते हैं, वास्तविक नहीं गीता अध्याय चार श्लोक छह में भगवान् स्वयं कहते है- कि मैं अजन्मा अविनासी आत्मा होता हुआ भी प्रकृति को अपने आधीन करके (प्रकृति के आधीन होकर नहीं) अपनी माया से प्रगट होता हूँ- **''सम्भवाम्यात्ममायया''** इस प्रकार अध्याय चार से अध्याय दस विभूति योग तथा ग्यारह, वारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्तरह, अठारह आदि अध्यायों में अपने निर्गुण स्वरूप को ही 'मै' 'मेरा' और मुझे रूप से प्रयोग कर रहे हैं।

श्लोक-यथा-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्या जी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसिमे।।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिामि मा शुचः ।।

इन दोनों श्लोकों में 'मुझ''मेरा' और 'मैं' उनके निर्गुण स्वरूप के अर्थ में ही इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

प्रतिपाद्य विषय क्या होता है

उस पर विचार

किसी भी ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय के निर्णय के लिए उपक्रम और उपसंहार की एकता रूप मुख्य साधन माना गया है। अर्थात्

अमुक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय क्या है, इसका निश्चय करने के लिए उस ग्रन्थ के आरम्भ (उपक्रम) में जो विषय कहा गया है और ग्रन्थ के अन्त (उपसंहार) में वही जो विषय कह कर ग्रन्थ की समाप्ति की गई है, वही विषय उस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय बन सकता है- ऐसा सभी शास्त्रकारों का मत है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के मध्य में जो कुछ कहा गया है, वह विषय या तो साधन रूप हो सकता है, या अभ्यास रूप, अथवा अर्थवाद रूप ही हो सकता है, प्रतिपाद्य विषय नहीं हो सकता। इसी द्रष्टि को ध्यान में रखकर यदि श्रीमद् भगवद् गीता के प्रति पाद्य विषय का विचार किया जाय तो एक मात्र अद्वैत ज्ञान ही इसका प्रतिपाद्य विषय बन सकता है, भेद भक्ति कदापि नहीं। वह इस प्रकार है:- श्रीमद्भगवद् गीता को हम चार पाद बनाते हैं प्रथम पाद साढ़े चार अध्याय द्वितीय पाद नव अध्याय त्रितीय पाद साढ़े तेरह अध्याय चतुर्थपाद साढ़े तेरह अध्याय के आगे अठारह अध्याय तक, उपक्रम अर्थात प्रथम पाद उपसंहार अर्थात् चतुर्थपाद इनकी एकता रूप "प्रतिपाद्य विषय" अब प्रथम पाद उपक्रम चतुर्थ अध्याय के श्लोक 19वां **ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।।**

अर्थ।। ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानीजन भी पण्डित कहते हैं

श्लोक 33 वां

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

अर्थ- हे पार्थ! सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त होते हैं, अर्थात ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है।

श्लोक 36वां

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।

अर्थ- ज्ञान रूप नौका द्वारा निः सन्देह सम्पूर्ण पापों को अच्छे प्रकार तर जायेगा।

श्लोक 37वां

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।

अर्थ- ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देता है।

श्लोक 38 वां

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।।

अर्थ- इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वला निःसन्देह कुछ भी नहीं है।

श्लोक 42वां

तस्माद ज्ञान संभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।

अर्थ- इससे हे भरतवंशी अर्जुन तूं समत्व बुद्धि रूप योग में स्थित हो और अज्ञान से उत्पन्न हुए हृदय में स्थित इस अपने संशय को ज्ञान रूप तलवार द्वारा छेदन करके युद्ध के लिए खड़ा हो।

यही अद्वैत ज्ञान श्रीमद्भगवद् गीता का उपक्रम अर्थात् प्रारम्भिक विषय है।

अब चतुर्थ पाद उपसंहार अध्याय अठारह श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् ने अर्जुन को एक मात्र ज्ञान का उपदेश किया है। यह बात गीता के अन्त अध्याय अठारह श्लोक 63 में वे स्वयं श्री मुख से

प्रतिपादन कर रहे हैं।

''इति ते ज्ञानमख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया''

अर्थ- अर्थात् इति यहाँ तक गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिए कहा यदि गीता का विषय निष्काम कर्म तथा उपासना होता तो यहां गोपनीय ज्ञान के स्थान पर निष्काम कर्म या उपासना कहना चाहिए था।

श्लोक 70वां

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।

अर्थ- वे गीता अध्ययन करने वालों के प्रति माहात्म्य में कथन करते हैं कि जो हमारे इस गीता-ज्ञान सम्वाद का अध्ययन करेगा, उसने ज्ञान यज्ञ के द्वारा मेरी पूजा की ऐसा मैं मानूँगा।

श्लोक 72वां

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिद ज्ञान संमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।।

अर्थ- भगवान् अर्जुन से पूछते हैं कि क्या तुमने एकाग्रचित्त इस ज्ञान को सुना और क्या तुम्हारा अज्ञान जन्य मोह नष्ट हुआ। इस पर अर्जुन छाती पर हाथ रख कर उद्घोषणा करता है-

श्लोक 73वां

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

अर्थ- स्वीकार करता है कि हां मेरा मोह नष्ट हो गया है, मैं गत

सन्देह हो गया हूँ और आपके वचनों को पालन करने के लिए तैयार हूँ। अज्ञान जन्य मोह तो ज्ञान द्वारा ही निवृत्त हो सकता था। यदि भेद भक्ति द्वारा होता तो इससे पहले अब तक भेद भक्ति तो उसकी सर्वथा सिद्ध थी ही फिर इस मोह की उत्पत्ति का अवसर ही नहीं आना चाहिए था। ज्ञान सिद्ध होने पर अर्जुन ने जो युद्ध में प्रवृत्ति की वह गीता ज्ञान के विरुद्ध नहीं थी आपने जो यह प्रश्न किया है कि शंका 7. क्या अर्जुन ने गीता प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण किया?

समाधान- आपका यह प्रश्न ज्ञान के आशय को न जान कर ही है। कर्मशून्यता ज्ञान नहीं है, किन्तु कर्तृत्व व कर्तव्य शून्य होना ही ज्ञान हैं अर्थात् कर्म के साधन जो देह इन्द्रियां, मन एवं बुद्धि है, उनमें से अहं भाव निकल कर इनके व्यापारों का कर्त्ता न रह कर केवल द्रष्टा- साक्षी, निरीक्षक, दर्शक रहना ही ज्ञान है। फिर देह, इन्द्रियां, मन और बुद्धि आदि प्रकृति प्रवाह में पड़े हुए अपने व्यापारों में भले वर्ते, परन्तु इसको उनका कोई लेप न रहे, यही ज्ञान है।

श्लोक 17वां

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँ ल्लोकान्न हन्ति निवध्यते।।

अर्थ- भगवान कहते हैं कि जिसका अहंकर्त्ता भाव नहीं रहता और इस प्रकार जिसकी बुद्धि इनमें लिपायमान नहीं होती, वह चाहे इन सब लोगों को हनन कर दे तो भी हनन नहीं करता और उससे नहीं बँधता। इसी ज्ञान को सम्पन्न करके भगवान् ने अर्जुन प्रव्रत्त किया

था। यह चतुर्थ पाद का उपसंहार है प्रथम पाद उपक्रम + चतुर्थपाद उपसंहार की एकता यही अद्वैत ज्ञान श्रीमद्भगवद् गीता का प्रतिपाद्य विषय है।

8. शंका- श्रीमद्भागवत पुराण को क्या आप प्रमाणिक ग्रन्थ नहीं मानते? यदि प्रमाणिक मानते हैं तो उद्धव जी के ये भाव कि मैं वृन्दावन में कोई झाड़ी, लता आदि बन जाऊँ जिससे वृजांगनाओं की चरण धूली मुझ लता बने उद्धव पर पड़ती रहे।

दशम स्कन्ध श्लोक 47वां

आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्याम् ।
वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्।।

समाधान- ये उद्धव जी ने जो बचन कहे, वे ज्ञानी उद्धव के नहीं किन्तु भक्त उद्धव के बचन हैं यहां आपने उसको बिना जाने और समझे ही ज्ञानी उद्धव जी लिख दिया है। ज्ञान तो उद्धव को एकादश स्कन्ध अध्याय 7 में उस समय शुरू होता है, जबकि यादवों को ब्राह्मणों का शाप हो जाता है और भगवान् अपने धाम को जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। वह अध्याय 29 में समाप्त होता है। वहाँ एकादश स्कन्ध अध्याय 29 श्लोक 37-39 में उद्धव स्वीकार करता है- यथा श्लोक

विद्रावितो मोह महान्धकारो
य आश्रितो मे तव सन्निधानाते।
विभावसोः किं नु समीपगस्य
शीतं तमो भीः प्रभवनजाद्य।।

अर्थ- उद्धव जी ने कहा प्रभो! आप माया और ब्रह्मा आदि के मूल कारण हैं मैं मोह के महान् अन्धकार में भटक रहा था। आपके सतसंग से वह सदा के लिए भाग गया। भला जो अग्नि के पास पहुँच गया उसके सामने क्या शीत, अन्धकार और उसके कारण होने वाले भय ठहर सकते हैं? श्लोक यथा-

वृक्णश्च में सुदृढ़ः स्नेहपाशो
दाशार्हवृष्णयन्धक सात्वतेषु।
प्रसारितः सृष्टि विवृद्धये त्वया
स्वमायया ह्यात्मसुबोध हे तिना।।

अर्थ- उद्धव जी कहते हैं- आपने अपनी माया से सृष्टि बृद्धि के लिए दाशहि, वृष्णि अन्धक और सात्वत वंशी यादवों के साथ मुझे सुद्रढ़ स्नेह पाश से बाँध दिया था। आज आपने आत्म बोध की तीखी तलवार से उस बन्धन को अनायास ही काट डाला। कृपया देखिये कि यदि भेद भक्ति इस मोह अन्धकार को निवृत्त करने में समर्थ होती तो उसको इस प्रकार इस स्थल पर पहुँच कर ही सन्तोष प्रकट करना न चाहिए था।

9. शंका- क्या श्रीमद्भागवत के दो श्लोक प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध है?

भवे-भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो।।
नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्राणाशनम्।
प्रणामो दुःख शमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

क्या ये दो श्लोक श्रीमद्‌भागवत के प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध हैं

समाधान- हां ये दो श्लोक प्रतिपादित सिद्धान्त के विरुद्ध है। द्वादश स्कन्ध अध्याय 12 श्लोक 12 यथा-

सर्ववेदान्त सारंयद् ब्रह्मात्मैकत्व लक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम्।।

अर्थ-सर्व उपनिषदों का सार ब्रह्म और आत्मा का एकत्व स्वरूप अद्वितीय सत् वस्तु ही है। और वही श्रीमद्‌भागवत का प्रतिपाद्य विषय है इसके निर्माण का प्रयोजन एक मात्र कैवल्य मोक्ष है।

10. **शंका**- गोपियो की भेद भक्ति क्या पाखण्ड थी ?

समाधान- गोपियां इतनी अनन्य भक्ति थी फिर भी भेद भक्ति द्वारा उनका अज्ञान जन्य मोह दूर नहीं हुआ। प्रभास क्षेत्र में सूर्य ग्रहण के अवसर पर भगवान् श्री कृष्ण ने आपात कालीन गोपियों की धर्म संसद में गोपियों को ब्रह्म विद्या का उपदेश किया तब गोपियों का अज्ञान जन्य मोह की निवृत्ति हुई। दशम स्कन्ध अध्याय-82

अध्यात्म शिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः।
तदनुस्मरण ध्वस्त जीव कोशास्तमध्यगन।।

अर्थ- श्री शुकदेव जी कहते हैं हे परीक्षित! भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार गोपियों को अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा से शिक्षित किया। उसी उपदेश के बार-बार स्मरण से गोपियों का जीव कोश अर्थात् सूक्ष्म शरीर नष्ट हो गया और वे ब्रह्म से एक हो गयी, ब्रह्म को ही सदा सर्वदा के लिए प्राप्त हो गयी।

11 शंका- मीरा की कृष्ण भक्ति तथा कृष्ण प्रेम क्या पाखण्ड था ?

समाधान- पहले मीरा के कृष्ण प्रेम पर थोड़ा विचार करते हैं मीरा और श्री कृष्ण के जन्म में साढ़े पांच हजार वर्ष का फासला है प्रेम तो समकालीन के साथ हो सकता है। ये तो साधारण प्रेम की बात है, असली प्रेम किससे होता है ये थोड़ा समझ लें परम प्रेम का विषय तो अपना आत्मा है यथा-

इयमात्मा परानन्दः पर प्रेमास्पदं यतः।
मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते।।

(पञ्चदशी)

अर्थ- यह ज्ञान ही आत्मा है और यह परमानन्द स्वरूप भी है। क्योंकि यह परमानन्द स्वरूप भी है। क्यों कि यह परम प्रेम का आस्पद है। ''मैं न रहूँ ऐसा कभी न हो किन्तु मैं सदा बना रहूँ'' ऐसा प्रेम आत्मा से सभी करते हैं। यह संवित् ज्ञान ही आत्मा है और यह परमानन्द स्वरूप भी है क्योंकि यह परम प्रेम अथवा निरतिशय (सर्वाधिक) प्रेम का विषय है। इसको सबसे अधिक प्रेम किया जाता है। ''मैं कभी न रहूँ ऐसा कभी न हो किन्तु सदा ही बना रहूँ'' ऐसा एक सर्वाधिक प्रेम आत्म विषय में सभी को देखा जाता है।

तत्प्रेमात्मार्थमन्यत्र नैवमन्यार्थमात्मनि।
अतस्तत् परमं तेन परमानन्दतात्मनः।।

(पञ्चदशी)

अर्थ- वह प्रेम अपने लिए तो दूसरों से भी कर लिया जाता है

परन्तु दूसरों के लिए अपने आपे से प्रेम करने की बात ठीक नहीं जँचती। इस कारण आत्म प्रेम ही परम प्रेम है। इसी आत्मा की परमानन्दता सिद्ध हो जाती है। अपने से भिन्न पुत्र आदि में भी जब प्रेम दीख पड़ता हो तब धोखे में आकर उसको स्वाभाविक प्रेम नहीं मान बैठना चाहिए। क्योंकि वह प्रेम पुत्रादियों में आत्मार्थ ही होता है। उनमें स्वाभाविक प्रेम किसी को नहीं होता। इसके विपरीत लोगों को जो आत्मा में प्रेम होता है वह प्रेम किसी दूसरे के लिए नहीं होता। किन्तु वह अपने लिए होता है। यो निरूपाधिक (अथवा निर्व्याज) होने के कारण यह आत्म-प्रेम ही परम (अर्थात् निरतिशय) प्रेम कहाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि निरतिशय प्रेम का आस्पद होने से, आत्मा ही परमानन्द स्वरूप सर्वाधिक सुख रूप है। इससे सिद्ध हो गया कि मीरा अपने आत्म स्वरूप से प्रेम करती थी कृष्ण से कदापि नहीं अब मीरा की कृष्ण भक्ति को थोड़ा समझ ले **"स्वरूपानु संधानं परा भक्ति रित्य भिधीयते"** अपने स्वरूप का अनुसंधान करना परा भक्ति है मीरा की वाणी है यथा-

म्हारो जन्म-मरण को साथी थाने नहि विसराऊ दिन राती।
तुम देख्या विनु कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।।
ऊँचे चढ़-चढ़ पन्थ निहारु रोवे अखिया राती।।
यह संसार सकल जग झूठा, झूठा कुलरान्याती।
दो कर जोड़या अरज करत हूँ, सुन लीजे मेरी बाती।।
ये मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यो मदमातो हाथी।।
सद्गुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।।
पल-पल तेरो रूप निहारू, हरि चरणा चितराती।।

ऊँचे चढ़-चढ़ पन्थ निहारू का भाव यह है कि योग के अनुसार शरीर के भीतर सात चक्र है उन चक्रों पर मीरा ऊँचे चढ़ रही चक्र इस प्रकार हैं-1. मूलाधार 2. स्वाधिष्ठान 3. मणिपुर 4. अनाहत 5. विशुद्ध 6. आज्ञा 7. सहस्रार दो कर जोडया अरज करत हूँ का भाव यह है कि ये दो हाथ जो मनुष्य के अन्दर द्वन्द है उसके प्रतीक है। द्वन्द जब तक गिर ना जाये निर्द्वन्द न हो जाये, जब तक अद्वैत की अवस्था न हो तब तक अरजी उस तक पहुँचेगी नहीं द्वन्द के सब उठे स्वर संसार में खो जाते हैं। द्वैत की उठी सब चिट्ठियां संसार में एक दूसरे के पास पहुँच जाती है। तुम्हारी चिट्ठियां परमात्मा तक तभी पहुँचेगी जब अद्वैत से उठे स्वर हो जिस समय सुख-दुख, जन्म-मृत्यु यश-अपयश, सफलता-असफलता, एक हो जाये तुम्हारे भीतर निर्द्वन्द भाव दशा हो उस क्षण तुम्हारी पाती परमात्मा तक पहुँच जाती है। थोड़ा पहले द्वन्द को समझ ले सारा संसार द्वन्द है। संसार अशान्ति है। संसार दुख है। अगर तुम राजी हो दुख से, मजे से राजी रहो। मैं कौन जो तुम्हें खींच कर दुख के बाहर करूं? अगर तुम्हें मजा आ रहा है दुख में, पूरा मजा लो। लेकिन फिर पूछते मत फिरो कि दुख से बाहर कैसे होना? तुम अगर अपने राजी से, अपने खुशी से दुखी हो, फिर विलकुल ठीक है। फिर मैं तुम्हें वाधा न दूंगा। लेकिन तुम्हारी बड़ी अजीब गति है। द्वन्द से दुखी हो, दुख के बाहर होना चाहते हो और फिर पूछते हो कि द्वन्द के बाहर होने का उपदेश क्यों दिया जा रहा है जब सारा संसार ही द्वन्द है। सारा संसार द्वन्द है, लेकिन जिसको यह द्वन्द पता चलता है वह चेतना अलग है। जो इस द्वन्द को देखता है, साक्षी है, वह अलग है, वह संसार के बाहर है। द्वन्द के

तो पता भी कैसे चलता कि द्वन्द है, अगर निर्द्वन्द मौजूद न हो? इसे थोड़ा समझो। अगर तुम्हारे भीतर कोई शान्त केन्द्र न हो तो तुम्हें अशान्ति का पता कैसे चलेगा? किसको पता चलेगा कि अशान्ति है? अशान्ति को पता चलेगा कि अशान्ति है? अशान्ति को तो पता ही कैसे चल सकता है अशान्ति का? कोई शान्त केन्द्र तुम्हारे भीतर छिपा होना चाहिए जिसको पता चलता है अशान्ति का। दुख का किसे पता चलता है? अगर दुख ही दुख हो तो दुख का पता ही नहीं चल सकता। तुम्हारे भीतर आनन्द का कोई स्वर बज ही रहा होगा। उसी से तो तुम तौलते हो कि दुख है। नहीं तो तुम तौलते कैसे हो? तुम कैसे मुझसे आकर कहते हो मैं दुखी हूँ? कैसे कहते अशान्त हूँ? कैसे कहते हो कि अज्ञान में भटक रहा हूँ, अन्धकार में जी रहा हूँ? तुम्हें कुछ न कुछ अनजानी पहिचान है प्रकाश की। तौलोगे कैसे अन्यथा? वह जहां से यह धीमी-धीमी, अनजानी पहिचान आ रही है, वह जगह द्वन्द के बाहर है और तुम चाहो तो वहां थिर हो सकते हो। लेकिन तुम्हारी मौज। संसार में ही रहना हो, द्वन्द ही में ही रहना हो, मजे से रहो। लेकिन वहां तुम रहना नहीं चाहते। तुम्हारी तकलीफ मुझे पता है। तुम्हारी तकलीफ यह है कि जो नहीं हो सकता, वह तुम करना चाहते हो। तुम रहना तो चाहते हो द्वन्द में, और आनन्दित रहना चाहते हो। मनुष्य की सारी प्रार्थनायें एक वाक्य में संगृहीत है- कि हे परमात्मा कोई ऐसी तरकीब बताओ कि दो और दो चार न हो। बस, असम्भव किसी तरह हो। क्यों कि तुम्हें लगता है द्वन्द में रंगारंग भी है, तुम्हें लगता है द्वन्द में सुख भी है, सारी वासनायें उस तरफ ले जाती हैं। चहल-पहल वहां है। मगर उस चहल-पहल में अशान्ति है।

तो तुम मेरे पास चले आते हो–या किसी के पास जाते हो कि शान्त
कैसे हो जाये? वही अड़चन शुरू होती है। तुम चाहते हो कि द्वन्द को
भोगते हुए शान्त कैसे हो जाये। यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें बताता
हूँ कि शान्ति की यह राह है कि तुम शान्त हो जाओ। लेकिन तब द्वन्द
खो जायेगा। द्वन्द को भी तुम पकड़े रखना चाहते हो। मेरे पास लोग
आते हैं। वे कहते हैं, महत्वाकांक्षा तो नहीं छूटती लेकिन शान्ति की
बड़ी आकांक्षा है। अब यह हो कैसे सकता है? लोग मुझसे पूछते हैं
कि जो हम कर रहे हैं, जैसा हम कर रहे हैं, क्या वैसे ही करते-करते
कुछ घटना नहीं घट सकती? तो फिर घटना घटानी ही क्यों है? अगर
तुम राजी हो तो फिकर छोड़ो। राजी भी नहीं, क्योंकि दुःख मिल रहा
है और सुख की आशा बनी है वही। एक सज्जन है पंजाब में, और
पंजाब में हमेशाआशान्त रहते है। तो मैं अमर कंटक गया तो वे मेरे
साथ अमर कंटक गये। अमर कंटक में बड़ी शान्ति थी। दूसरे दिन
वे कहने लगे कि यहां तो मन ऊबता है। पंजाब में अशान्त थे कि यह
पंजाब जो है पागलपन है, अमर कंटक में भी अशान्त हो गये क्योंकि
शान्ति उबाने लगी। अब वे चाहते हैं अमर कंटक की शान्ति पंजाब
में या अमर कंटक में पंजाब का उपद्रव। उस उपद्रव के बिना भी नहीं
जी सकते, उस उपद्रव के साथ भी नहीं जी सकते। यह नहीं हो
सकता। तुम्हें बदलना पड़ेगा। अगर द्वन्द दुख दे रहा है, तो तुम्हें
निर्द्वन्द होना पड़ेगा तुम्हें तीसरा सूत्र खोजना पड़ेगा जो दोनों के बाहर
है। अगर तीसरा सूत्र तुम खोज लो और तीसरे सूत्र में पूरी तरह लीन
हो जाओ, तो जरूर असम्भव भी घट सकता है। तब एक दिन तुम
बाजार में वापस आ सकते हो, तुम्हारे भीतर अमर कंटक की शान्ति

होगी। तुम बीच पंजाब में खड़े हो सकते, बीच बाजार में, लेकिन अमर कंटक की शान्ति तुम्हारे भीतर होगी। तब तुम वहाँ होओगे भी और नहीं भी होओगे। तब बाहर से तुम वहां होओगे, भीतर से तुम वहाँ नहीं होओगे। लेकिन यह तो आखिरी घटना है, यह पहले नहीं घट सकती।

पहले तो य तय करना ही होगा कि दुख के ऊपर उठना है तो द्वन्द को छोड़ना है। दुख के ऊपर उठकर, द्वन्द को छोड़कर एक दिन तुम्हारे भीतर ऐसी गरिमा का उदय होगा, ऐसी गहन शान्ति जन्मेगी कि फिर तुम लौट आ सकते हो बाजार में। तब तुम्हें कोई बन्धन न होगा, तब तुम्हें कोई द्वन्द न छुएगा कोई द्वैत न छुएगा। आखिर परमात्मा भी तो द्वन्द में ही रह रहा है, उसे नहीं छूता। क्योंकि वह द्वन्द में है और नहीं है। द्वन्द में ऐसे हैं जैसे कोई अभिनेता होता है। तुम द्वन्द में कर्त्ता की तरह हो, तुम वहाँ बह जाते हो। तुम अभिनेता नहीं हो। तुम्हारा धन खो जाता है तो तुम्हारी आंख से अभिनेता के आंसू नहीं बहते हैं, असली आंसू बहते हैं। तुम सच में रोते हो। तुम्हारी पत्नी खो जाये तो तुम सच में चिल्लाते हो, छाती पीटते हो, वैसा नहीं जैसा राम लीला में राम की सीता खो जाती है तो वे पूछते हैं वृक्षों से, कहा मेरी सीता! लेकिन तुम जानते हो कि वे बिलकुल नहीं पूछ रहे, केवल अभिनेता है। भीतर कुछ भी नहीं हो रहा, सब बाहर-बाहर से हो रह है। आंसू भी लाते हैं तो नाटक कंपनियां मिर्च का मसाला रखती हैं। वे जल्दी से, हाथ में मिर्च लगाये रखते हैं, आंख पर मीड़ लेते हैं आंसू बहने लगते हैं। रामचन्द्र जी को भी रामलीला में थोड़ी सी मिर्च आंख में लगानी पड़ती है, तब आंसू आते हैं। अब आंसू कोई तुम्हारी आज्ञा

से चलते नहीं। और असली आंसू एक बात है, नकली लाना बड़ी मुश्किल बात है। कभी नकली आंसू लाकर देखो, तब पता चलेगा। आज अभ्यास करना बैठ कर कि नकली आंसू किसी तरह आ जायें। वे बिलकुल न आयेगा। बिलकुल सूख जायेगी आंखे, पता ही न चलेगा कि आंखों में कोई आंसू भी है कहीं। जिस दिन व्यक्ति अपने भीतर की गहन शान्ति में थिर हो जाता है उस दिन जगत एक अभिनय है। इसलिए हमने इसे लीला कहा है। उस दिन वह सब करता है– वह बाजार जाता है, वह दुकान चलाता है, वह पत्नी को सम्हलता, बच्चो सम्हालता– वह सब करता है, फिर भी अकर्त्ता बना रहता है। वही सिद्ध की दशा है। लेकिन उससे पहले तुम्हें साधक होने से गुजरना पड़ेगा। तुम्हें द्वन्द से हटना पड़ेगा। हटने की कला को ही मैं जागरण कहता हूँ। जागकर देखते रहो। जागते–जागते, जागते–जागते, तुम्हारे भीतर तीसरी स्थिति खड़ी हो जायेगी। दो बाहर रह जायेंगे, तीसरा भीतर हो जायेगा। वह तीसरा दो के पार है। उस पार का अनुभव होने लगे, फिर कोई कठिनाई नहीं है। फिर कोई गाली दे, निन्दा करे, स्तुति करे, सब बराबर है। फिर कोई अन्तर नहीं पड़ता है। फिर एक विराट अभिनय है, बड़ा मंच है, चल रहा है। तुम्हें दिया गया पात्र तुम्हें पूरा कर देना है। ऐसी कथा है कि जापान में एक फकीर हुआ, जो कि हत्यारा था। पहले वह सैनिक था, तब भी लोगों को लगता था कि वह मारता जरूर है, लेकिन मारता नहीं। उसकी झलक उसके निकट के लोगों को पता चलती थी। फिर वह एक ही काम सीखा था। मुक्त हे गया सेना से, तो उसने बधिक का धन्धा कर लिया, बूचर बन गया। कहते हैं, वह जिंदगी भर पशुओं को ही

काटता रहा। सम्राट भी उसके पास शिक्षा लेने आते थे। अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि यह बात शोभा नहीं देती कि तुम और पशुओं को काटो। वह हंसता और कहता, जो परमात्मा ने काम पकड़ा दिया वह कर रहे हैं, न हमने चुना, न हमारी कोई जिम्मेदार उसकी मर्जी है कि हम बधिक रहे, हम बधिक हैं। न कोई वैमनस्य है इन पशुओं से, न कोई शत्रुता है, न इन्हें बचाने का कोई अपना आग्रह है, न मिटाने का कोई अपना आग्रह है। जो मिल गया अभिनय वह पूरा किये दे रहे हैं। कहते है वह परम मुक्ति को उपलब्ध हुआ। तुम अहिंसा साध-साध कर भी न हो पाओगे, और कभी-कभी हत्यारे भी मुक्त हो गये हैं। असली राज न तो अहिंसा में है, और न हिंसा में है, असली राज तो जीवन को अभिनय बना लेने में है। तुम कर्त्ता न रह जाओ। अब तुमने अगर एक मक्खी को नहीं मारा या एक चीटी को नहीं मारा तो तुम हिसाब लिख लेते हो कि आज एक चीटी बचाई। मगर तुम कर्त्ता हो, तुम कुछ कर रहे हो कर्तृत्व बन्धन है, साक्षित्व मुक्ति है। तुम कर्त्ता न रहो धीरे-धीरे साक्षी हो जाओ। कर्ता में द्वन्द है, साक्षी अद्वैत अवस्था है। जिस दिन यह घट जायेगा। उस दिन सब ठीक है, उस दिन कोई फर्क नहीं पड़ता। क्या करते हो, क्या नहीं करते हो, सब बराबर है। यह जगत स्वप्न से ज्यादा नहीं। यह तुम्हें सत्य मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम सोये हो। तुम जागोगे तो पाओगे, सब सपना खो गया। साधु भी सपने में साधु है और असाधु भी सपने में असाधु है। जागा हुआ न तो साधु है न असाधु। जागे हुए को हम सन्त कहते हैं, सिद्ध कहते हैं। वह न अच्छा है न बुरा, वह सिर्फ जाग गया। सपना खो गया। न उसे कुछ अच्छा बचा, न कुछ

बुरा, न शुभ, न अशुभ, न पाप, न पुण्य। इसलिए सन्तत्त्व आखिरी शिखर है।

वेद कहता है -

जीवेद शरद सतं — सौ वर्ष तक जीवो।

कैसे जीवो ?— **पश्येम शरदसतं** (वेद)

दर्शक बनकर द्रष्टा बनकर निरीक्षक बन कर जीवो तभी जीवन है। अन्यथा मुर्दे हो -

जीवत शव समान तेहि प्राणी।

12. शंका- क्या नारद भक्ति सूत्र के बचन सब पाखण्ड है? सिद्धान्त के विरुद्ध है?

समाधान- उपनिषदों में एक गाथा है कि एक बार महर्षि नारद सनकादिकों के पास गये उनसे निवेदन किया कि मैंने सुना है कि भूमा (ब्रह्म) शोक, मोह रहित है, परन्तु मुझे शोक मोह होता है। इसलिए आप कृपा करके उस भूमा का उपदेश कीजिए जिससे मैं शोक, मोह से रहित हो जाऊँ। इस प्रकार सनकादिकों ने नारद को ब्रह्म का उपदेश किया-

''**यो वै भूमा तत्सुखम्**'' और तब नारद जी का अज्ञान जन्य शोक मोह से रहित हुए। कृपया देखिये कि जब भेद भक्ति सूत्र के रचयिता को भी ब्रह्म उपदेश की जरूरत पड़ती है, तब इतर जीवो के लिए तो क्या कहा जाय कि वे भेद भक्ति द्वारा कैवल्य मोक्ष को प्राप्त हो जावेंगे (कभी भी नहीं) अब आइये इसी विषय पर निष्कर्ष रूप से थोड़ा विचार करें कृपया देखिए कि अर्जुन ने सखा रूप से, उद्धव

ने दास भाव से, गोपियों ने पति भाव से भगवान की सेवा पूजा और भक्ति की तथा भक्ति के आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण को सब प्रकार प्रसन्न किया और निरन्तर दीर्घ काल तक उनके दर्शनों और चरण सेवा से कृतार्थ होते रहे, परन्तु उनमें से किसी का भी बन्धन का मूल देह में आत्म बुद्धि और अज्ञान जन्य मोह इस भेद भक्ति और सेवा से निवृत्त नहीं हुआ। प्रमाण रूप से गीता अध्याय 2 का श्लोक लीजिए यथा-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमेसमुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।

अर्थ- इससे श्रीकृष्ण अर्जुन की भर्तस्ना करते हैं कि हे अर्जुन! यह अज्ञान इस विषम स्थल में तेरे में कहां से आ गया, जो श्रेष्ठ पुरुषों से असेवित स्वर्ग का विरोधी और इस लोक में अकीर्ति करने वाला है। पुनः गीता अध्याय 2 श्लोक 33वां यथा-

अथचेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।

अर्थ- श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को न करेगा तो अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप को भी प्राप्त होगा। इधर सब प्रकार भेद भक्ति सम्पन्न उद्धव श्रीकृष्ण के ज्ञान उपदेश के समय श्रीमद्भागवत का एकादश स्कन्ध अध्याय 7 श्लोक 18 वें

तस्माद् भवन्तमनवद्यमनन्तपारं।
सर्वज्ञमीश्श्वरमकुण्ठ विकुण्ठधिष्ण्यम्।।

निर्विण्णधीरहमह वृहिनाभितप्तो।

नारायणं नर सखं शरणं प्रपद्ये।।

अर्थ- भगवन् इसी से चारों ओर से दुखों की दावाग्नि से जलकर और विरक्त होकर आपकी शरण आया है। आप निर्दोष देशकाल से अपरिछिन्न अविनाशी वैकुण्ठ लोक के निवासी नर के नित्य सखा नारायण है। अतः आप ही मुझे उपदेश कीजिए। इधर गोपियों के विरहाग्नि जन्य कष्ट का तो कहना ही क्या? ऐसी भेद भक्ति ऐसा आराध्य देव का दर्शन होना दुर्लभ और दुर्लभतर ही है। इधर महर्षि नारद की चर्चा ऊपर हो ही चुकी है, जो कि नित्य भगवान् विष्णु के दर्शन करते थे और कृपा पात्र बने हुए थे। अर्जुन, उद्धव तथा गोपियां एवं नारद अज्ञान बन्धन से उसी समय छूट पाये जब उनके साधन स्वरूप सद्गुरु ने ब्रह्म ज्ञान का उपदेश किया अर्जुन के लिए गीता, उद्धव के लिए भागवत का एकादश स्कन्ध, गोपियों के लिए श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध, और नारद के लिए वह वेद का भाग जहाँ सनकादिकों ने नारद को उपदेश किया "**यो वै भूमातत्सुखम्**" बन्धन का मूल अहंता और ममता ही है, उनमें भेद-भक्ति द्वारा ममता का सम्बन्ध संसार से तोड़कर भगवान् के चरण कमलों से ममता का नाता जोड़ना ही है। इस प्रकार भेद भक्ति केवल ममता का प्रवाह बदलने में ही समर्थ है, परन्तु संसार की मूल अहंता को काटने में किसी प्रकार समर्थ नहीं। क्योंकि यह भेद-भक्ति स्वयं अहंता के बल या आधार पर पोषण पा रही है। भगवान मेरे हैं, मैं भगवान् का हूँ यही भेद भक्ति का स्वरूप है और इसकी सिद्धि अहंता के आधार पर ही होती है। फिर ये भेद भक्ति अपनी मूल अहंता को कैसे काट

सकती है? इस प्रकार सभी जन्म-मरण, पुण्य-पाप, संसार-बंधन केवल इस सीमित अहंता के आधार ही सिद्ध होते हैं। और एक मात्र अहंता ज्ञान कुठार से ही काटी जा सकती है, ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः अन्य कोई उपाय नहीं हो सकता है। गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं यथा–

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान कोई पवित्र वस्तु नही है जो कर्त्ता भोक्ता जीव को नित्य मुक्त बना देता है। उस ज्ञान से द्वेष रखकर कभी कल्याण को प्राप्त नहीं हो सकते। ज्ञान से द्वैष तो साक्षात् परमात्मा के स्वरूप अर्थात् निर्गुण ब्रह्म से द्वैष करना है। इसलिए सावधान रहो कि द्वैष का आलिंगन किये रखकर आप परमात्मा को कदापि आलिंगन नहीं कर सकते। यदि संसार की मूल अहंता काटे बिना तुमने ममता रूपी डाली पत्ते निकाल कर ही सन्तोष कर लिया तो वह मूल फिर फूटेगी और जय-विजय के समान कंटकों में तुम्हें फसाये बिना न रहेगी। इसलिए जिस प्रकार एम.ए. का जिज्ञासु बी.ए. की तैयार करता हुआ एम.ए. के लिए उत्सुक रहता है, यदि वह बी.ए. में डेरा डाल कर एम.ए. से द्वैष करने लग पड़े तो वह अवश्य ही वास्तविक लाभ से वंचित रहेगा। एक साधक होता है एक साधन होता है। एक साध्य होता है। उदाहरण के लिए अर्जुन साधक है श्रीकृष्ण साधन है और निर्गुण ब्रह्म साध्य है अर्थात् वह अपना स्वरूप अर्जुन, उद्धव तथा गोपियों के श्रीकृष्ण साधन थे। साध्य उनके भी नहीं मीरा के कृष्ण न साधन है न साध्य है। मीरा साधक है मीरा के सद्‌गुरु साधन है मीरा का अपना स्वरूप साध्य है।

इसलिए मीरा कहती है **सद्गुरु हस्त धरयो सिर ऊपर अंकुस दे समझाती** क्योंकि सभी का साध्य निर्गुण ब्रह्म होता है।

श्रुति कहती है-

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।

अर्थ- मन से जिसका मनन नहीं हो सकता, जो मन को प्रकाशित करता है उसी को तुम ब्रह्म जानो। मन और इन्द्रियों द्वारा जिसकी उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है। घर में दर्पण पर बाहर का प्रकाश पड़ता है तो घर में प्रकाश हो जाता है, किन्तु वह प्रकाश दर्पण से नहीं आया। मन दर्पण की भांति है। उस पर किसी का प्रकाश पड़ रहा है, तभी मन संसार को देख रहा है। मन से जो देख जाता है उसका नाम ब्रह्म नहीं है। जिसके कारण मन देखता है, वह ब्रह्म है। '**मनसो मनः**' तुम जिसे मन के सामने बैठाकर उपासना कर रहे हो, वह ब्रह्म नहीं उपास्य और उपासना आदि जितने भी भेद है सब वितथ है झूठ है और केवल अद्वय-आत्मा-ही परमार्थ है वही ब्रह्म है।

13 शंका- दिल्ली से बम्बई के लिए रेल, सड़क तथा वायुयान द्रष्टान्त से आपने मोक्ष प्राप्त के नाना मार्गों की कल्पना की सोमोक्ष के स्वरूप को न जानकर ही है।

समाधान- मोक्ष का स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार किया गया है

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदय ग्रन्थिश्छेदो मोक्ष इति स्मृतः।।

अर्थ- मोक्ष का कोई स्थान विशेष नहीं है और न किसी अन्य ग्राम में ही मोक्ष रहता है किन्तु केवल हृदय की अज्ञान रूप ग्रन्थि का कट जाना, यही मोक्ष है और वह उपर्युक्त विचारों के अनुसार केवल ज्ञान द्वारा ही काटी जा सकती है अन्य किसी प्रकार भी नहीं। आपके विचारानुसार कृपया सूचित करिये कि वह वायुयान कौन सा है, जिससे मोक्ष धाम पहुँचा जाता है? क्या निष्काम कर्म अथवा भेद भक्ति ज्ञान को तो आप मानेंगे नहीं क्यों कि वह तो आप को मान्य ही नहीं है। विचार से देखा जाय तो आप का द्रष्टांत स्वयं आप के मत का खण्डन करता है। वायुयान, ट्रेन तथा मोटर गति (स्पीड) के भेद ही प्रमाणित करते है। तथा एयर कण्डीशन, फर्स्ट क्लास, थर्ड क्लास केवल सोपानो के भेद ही सिद्ध करते है इनमें कोई भी मार्ग भेद को सूचित नहीं करते। क्योंकि दिल्ली से बम्बई जाने वाले सभी यात्रियों के लिए एक मात्र दक्षिण मार्ग ही हो सकता है चाहे वे किसी भी गति और किसी भी क्लास में जाय। यदि वे दक्षिण मार्ग को छोड़ कर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर के मार्गों से चलते हुए भी बम्बई पहुँच जायँ तो अवश्य मार्ग भेद सिद्ध हो सकता है। परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार आपके अनेक मार्गों की सिद्धि में न कोई द्रष्टान्त है न प्रमाण है और न युक्ति।

14. शंका- पूज्यपाद श्री रामानुजाचार्य
पूज्यपाद श्री निम्बार्काचार्य
पूज्यपाद श्री वल्लभाचार्य
पूज्यपाद श्री माध्वाचार्य
पूज्यपाद श्री चैतन्यमहाप्रभु

ये सभी आचार्यों ने भेद भक्ति मार्ग की स्थापना की थी क्या अल्पज्ञ थे?

समाधान- अर्जुन, उद्धव, गोपियां तथा नारद की भेद-भक्ति पहले ही चर्चा कर चुके हैं। कृपया इस पर विचार करिए अर्जुन सखारूप से, उद्धव ने दास भाव से और गोपियों ने पतिभाव श्रीकृष्ण की सेवा, पूजा और भेद-भक्ति की तथा भगवान् श्री कृष्ण को सब प्रकार प्रसन्न किया और निरन्तर दीर्घ काल तक उनेक दर्श और चरण-सेवा से कृतार्थ होते रहे परन्तु उनमें से किसी का बन्धन का मूल देह में आत्म बुद्धि और अज्ञान जन्यमोह इसी से निवृ नहीं हुआ। इधर नारद जी विष्णु भगवान् की सेवा पूजा और भेद-भक्ति की और निरन्तर दीर्घकाल तक उनके दर्शनों से कृतार्थ होते हैं अ भगवान् विष्णु के कृपा पात्र बने रहे। फिर भी नारद जी का अज्ञा जन्य मोह इससे निवृत्त नहीं हुआ।

फिर ये जो पांच आचार्य हुए उन्होंने श्रीराम की श्रीकृष्ण मन्दिर बनाये उनमें अर्थात् मन्दिरों में श्रीसीता-राम, श्री राधा-कृष्ण श्री विष्णु- लक्ष्मी की मूर्तियां स्थापित की और उन मूर्तियों को भो लगाना कपड़े पहनाना स्नान कराना शयन कराना इस गुडिया गुड के खेल से अज्ञान जन्य मोह कभी निवृत नहीं हो सकता इसी को भक्ति की स्थापना कहना कहते हो। ये गुड़िया गुडढों के खेल ज्यादा नहीं है।

बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्राप्त करै असनाना।
आतम छोड़ि पखाने पूजै, तिनका थोथा ग्याना।।

(कबी

कबीर कहते हैं-मैंने देखे सुबह स्नान करते हैं गंगा में वही नियमी धर्मी है। लेकिन मैं देखता हूँ कि पूजा वे आत्मा की नहीं करते, पत्थरों की ही करते हैं। स्नान करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, नियम-धर्म का पालन करते हैं- लेकिन पूजा पत्थर की करते हैं, चैतन्य की नहीं, दीये को पूजते हैं, ज्योति को नहीं। तो क्या होगा तुम्हारे स्नान से? पाप तुम करोगे, गंगा तुम्हारे पाप धोयेगी? गंगा ने कौन से पाप किये हैं जो तुम्हारे पाप धोये? गंगा का क्या कसूर है? कितना ही तुम स्नान करो शरीर को रगड़-रगड़ कर कितना ही धो डालो इससे भीतर की चेतना तो न निखरेगी इसका मतलब यह नहीं है कि स्नान मत करो।

पीपर पाथर पूजन लागे तीरथ वर्त भुलाना- (कबीर)

असली तीर्थ तो भूल ही गया जो भीतर है। तीर्थ का अर्थ जहां से परमात्मा की नाव छूटती है। काशी में तीर्थ नहीं, क्योंकि वहां से नाव छोड़ोगे तो दूसरी तरफ पहुंच जाओगे, परमात्मा में नहीं पहुंच जाओगे। तीर्थ का अर्थ होता है: वह जगह जहां से नाव परमात्मा की तरफ छूटती है। तो वह तीर्थ तो भूल ही गया। वह तो भीतर है। इस तरफ तुम हो, उस तरफ परमात्मा है- बीच में विराट जीवन की नदी है। 'पीपर पाथर पूजन लागे' और लोग वृक्षों को पूज रहे हैं, पत्थरों को पूज रहे हैं। 'तीरथ वर्त भुलाना' वर्त का अर्थ होता है दृढ़ संकल्प। न तो कोई संकल्प है जीवन में, वस ऐसे ही अंधे अंधों को धक्का दिये जा रहे हैं। दूसरे कर रहे हैं, तुम भी कर रहे हो। वही काम संकल्प से किया जाय तो धार्मिक हो जाता है और वही काम संकल्प के बिना किया जाये तो सांम्प्रदायिक हो जाता है। इस विषय में तो इतना ही

कहूँगा कि ये पांचों आचार्य और इनके द्वारा रचित वेद शास्त्र अपने-अपने विचारों के नुसार जीव भाव में बँधे हुए हैं। इस आत्म देव पर द्रवीभूत हो इसे अज्ञान निद्रा से जगाने के लिए वकीलों के समान अपनी-अपनी युक्तियों और दलीलों से चेष्टा परायण हो रहे हैं और अपने-अपने आरगूमेंन्ट्स इसके सामने रखते हैं। परन्तु उन सबके पुरुषार्थों की सार्थकता केवल तभी हो सकती है, जब कि यह आत्म-देव स्वयं भी अपने ऊपर कृपा करे और अपने अन्दर तीव्र जिज्ञासा भाव भरे तथा न्यायाधीश के रूप में न्याय की कुर्सी पर बैठे, उन सबके दलीलों को सुने और अपनी-अपनी मिसल का फैसला करने के लिए तत्पर हो, दूसरों की नहीं। इस अवस्था पर पहुँच कर सब ही रगड़े-झगड़े तय हो सकेंगे और मिसल का फैसला भी हो जायेगा, इसके बिना कदापि नहीं आप जब कभी इस कुर्सी पर विराजमान होंगे और अपनी मिसल का फैसला करने के लिए कटिवद्ध होगे, तभी हमारी दलील सफल होगी और आप भी सही परिणाम पर पहुँच जायेंगे। अन्त में मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ कि आपने अपने पत्र में अपने विचार प्रकट करके इस विषय को अधिक स्पष्ट और सुद्रढ़ करने का अवकाश दिया। कृपया इस पत्र के पहुँचते ही तुरन्त सूचित करिये और आप जो विशेष लिखने की रुचि रखते हो वह लिखिये जिससे विषय अधिक स्पष्ट हो और जिज्ञासु तथा मुमुक्षु मेरे-आपके विचारों द्वारा अपने लिए सही मार्ग निश्चित करने का अवसर प्राप्त करे।

पत्र की प्रतीक्षा में- आपका शुभचिन्तक

(नारायणानन्द)

।।ॐ।।

दिनांक 5 दिसम्बर सन् 2007

पूज्यपाद

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

सादर प्रणाम

आपको मैंने 27 नवम्बर को एक पत्र लिखा था। आशा है वह मिलगया होगा। शायद मेरी बात से आप को कष्ट हुआ हो। इसके लिए मैं आप से पुनः- पुनः, क्षमा याचना करता हूँ। ऐसे अनेक उदाहरण है कि ज्ञानी लोग भी सगुण भगवान् के रूप और गुण माधुरी को सुनकर अपने ब्रह्म स्वरूप के ध्यान की समाधि को भूल जाते हैं। अर्थात् उनकी समाधि टूट गयी जैसे राजा जनक भगवान राम को देखते ही ब्रह्मसुख को भूल गये पुरी के सार्वभौम भट्टाचार्य आदि अनेक हैं। यदि कोई भेद भक्ति मार्ग का अनुयायी अपनी भेद भक्ति भूल कर ब्रह्म की उपासना में लगा हो ऐसा कहीं शास्त्रों में उदाहरण मिलता हो तो आप एक-दो उदाहरण बताइये। यदि ऐसा नहीं तो आप अपना हठ छोड़ दीजिए कि केवल वेदान्त-ज्ञान से ही परम सिद्धि मिली सकती है? जिसको आप **अंसगोऽयमात्मा** मानते हैं यहाँ श्रीकृष्ण के विग्रह को भी असंग ही बताया गया है।

आपके सिद्धान्त में परम ज्ञान से हृदय ग्रन्थि का भेदन होता है, परन्तु हमारे सिद्धान्त में कथा श्रवण से ही हृदय ग्रन्थि का भेदन होता है?

अद्वैत सिद्धिकार स्वामी मधुसून सरस्वती जी महाराज के श्लोक प्रसिद्ध है-

1. **श्रृणु सखि कौतुकम्**- भाव यह है कि हे सखी। मैंने नन्द के परांगण में एक कौतुक देखा कि वेदान्त सिद्धान्त गौवों की धूली से आच्छादित वहाँ नृत्य करता था?

2. **वंशी विभूषित्करान्नवनीरदाभात्**- जिनके हाथों में वंशी शोभायमान है नये बादल के समान शोभा है, पीले वस्त्र पहने हुए हैं। अरुण विम्बफल के समान जिनके ओष्ठ है, पूर्ण चन्द्र के समान मुखारविन्द है, तथा कमल तुल्य जिसके नेत्र हैं ऐसे श्रीकृष्ण के प मैं किसी तत्व को नहीं जानता? एक श्लोक है वह कहां का है यह तो मुझे पता नहीं लेकिन इसमें जो विविध सम्प्रदायों और मतों क समन्वय है, इसको क्या आप भ्रम मानते हैं?

यं शैवाः संमुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।
बोद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः।
सोऽये वो विदधातु वाच्छितफलं त्रैलोक्य नाथोहरिः।।

गोस्वामी तुलसीदास का पद-

।। पद ।।

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम का नाम कल्पतरु, कलि कल्यान करो।।
करम उपासन ग्यान वेदमत, सो सब भांति खरो।।
मोहि तो सावन के अंधहि ज्यों, सूझत हरो-हरो।।
चाटत रहेउँ श्वान पातरि ज्यों, कबहु न पेट भरो।।

सो हों सुभिरत नाम सुधारस, पेखत परुसि धरो।।
स्वास्थ्य और परमारथहूको, नहि कुञ्जरो नरो।।
सुनियत सेु पयोधि पषानन्हि करि कपि कटक तरो।।
प्रीति प्रतीति जहां जाकी तहँ, ताको काज सरो।।
मेरे तो माय बाप दोऊ आखर हो सिसु अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहउँ कछु, तो जरि जीह गरो।।
अपनो भलो राम नामहि ते, तुलसिहि समुझि परो।।

क्या तुलसी दास के इस पद को आप भ्रम मानते हैं? क्षमा कीजिएगा।

मेरी तो ऐसी धारणा है। किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए केवल एक ही साधन और मार्ग नहीं है, अनेक साधन और मार्ग हो सकते हैं। और होने चाहिये। यदि आप की मान्यता यह हो कि केवल एक ही मार्ग हो सकता है, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आप उसी को मानिए और उसी का अनुशरण कीजिए आप तो परम स्वतन्त्र हैं।

आपका
कृपाकांक्षी

।। ॐ ।।

श्रीअध्यात्म ब्रह्म विद्यापीठ, वृन्दाव
15 दिसम्बर सन् 2007

श्री मन्महोदय-

सप्रेम नारायण।

आपका कृपा पत्र दिनांक 5 दिसम्बर सन् 2007 को आपने ज
लिखा प्राप्त हुआ अब उस पत्र पर विचार करते हैं।

1. शंका ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि ज्ञानी लोग भी सगुण भगवा
के रूप और गुण माधुरी को सुनकर अपने ब्रह्म स्वरूप के ध्यान क
समाधि को भूल जाते हैं। जैसे राजा जनक भगवान् श्रीराम को देख
ही ब्रह्म सुख को भूल गये अर्थात उनकी समाधि टूट जाती है?

समाधानः- इस विषय में आपको समझना कठिन है। अस्तित
की कृपा से जब कभी आप अपने निर्मल चित्त द्वारा संसारिक ममत
से छूटकर और ज्ञान के प्रति विद्वेष परित्याग कर किसी तत्त्ववे
ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की शरण में आयेंगे। तब आपको समाधि का रहस
समझायेंगे अभी तो आपकी भेद की भक्ति द्वैष से मिश्रित है एक
कड़वे करेला और नीम पर पौढ़े क्या हाल होगा। संक्षेप से में इत
ही कहूँगा कि ब्रह्म समाधि टूटने वाली वस्तु नहीं है यह तो अखण
है। आंख, नाक, कान का बन्द करना ब्रह्म समाधि नहीं है। ब
प्यारी पंक्ति हैं-

संकर सहज सरुप सम्भारा।।
लागि समाधि अखण्ड अपारा।।

(रामचरित मान

पुरी के सार्वभौम भट्टाचार्य तथा जनकादि तत्त्व वेत्ताओं की उद्घोषणा है- **दी अदर इज हेल्ड**- जो दूसरा है वह नरक है। **ईशदप्यन्तर रौरव नरकम् वृजेत** (स्मृति) ब्रह्म से अपने को भिन्न समझा तो नरक गये। **द्वितीया द्वै भयं भवति** (श्रुति) दूसरा दुख का कारण है। **बड़ी प्यारी पंक्तियां हैं-**

भेद प्रतीत महादुख दाता।
यम कठ में टेरत है ताता।।
याते भेद वाद चित्त त्यागहु।
इक अद्वैत वाद अनुरागहु।।
ज्ञेय ध्येय मोते कछु औरा।
लखै सो पशु यह वेद ढिढोरा।।
भेद बचन विश्वास करि,
सुनत जो कोउ अजान।
सो जन दुख भुगते सदा
ह्वै न ब्रह्म को ज्ञान।।
विनु वेदान्त न आनन्द कबहु।
मिले अवध लौ प्रथ्वी तबहु।।

(विचारसागर)

श्लोक-

ब्रह्माहं यत्प्रसादेन मयि विश्वं प्रकल्पितं

अर्थ- ब्रह्म मैं हूँ सारा जगत मेरे स्वरूप में कल्पित है। जगत का कारण ईश्वर भी मेरे स्वरूप में कल्पित है।

अध्यारोप अपवादाभ्यां निष्प्रपंच प्रपंचते।
शिष्याणां बोध सिद्धयर्थम् तत्त्वज्ञै कल्पितः कृमः।।

अर्थ- तत्त्वज्ञानियों ने ईश्वर का और जगत का आरोप किया है वैसे ही नहीं शिष्यों के बोध के लिए फिर अपवाद भी कर दिया है

2. शंका - यदि कोई भेद भक्ति मार्ग का अनुयायी अपनी भे भक्ति को भूलकर ब्रह्म की उपासना में लगा हो, ऐसा कहीं शास्त्र उदाहरण मिलता हो तो आप एक-दो उदाहरण बताइये। यदि ऐसा नहीं है तो आप अपना हठ छोड़ दीजिए कि केवल वेदान्त ज्ञान से ह परम सिद्धि मिल सकती है?

समाधान- आपके इन बचनों से बड़ा आश्चर्य होता है। अपनी मान्यता हृदय में भरी रख कर आप दूसरों की सुनते कहां है? मैं आपके पहले पत्र के उत्तर में एक-दो नहीं अनेकों उदाहरण दिये हैं तथा साधारण भक्तों का नहीं, उन भक्तों का जिन्होंने आराध्य देव के साथ-साथ रहे हैं। जीवन भर उनके चरणाबिन्दो में मग्न रहे फिर भी उनका अज्ञान जन्य मोह दूर न ही हुआ आराध्य देव ही उन पर अनुकम्पा करके उनको ज्ञान का उपदेश करते हैं। क्यों वे अपने सगुण रूप के साक्षात्कार पर ही उनका सच्चा श्रेय निर्भर नहीं करते अर्थात् उद्धव, अर्जुन गोपियां तथा भक्ति सूत्र के रचयिता महर्षि नारद इत्यादि।

3. शंका- जिसको आप **असंगोऽयभात्मा** मानते हैं यहां श्री कृष्ण के स्वरूप को असंग बताया गया है?

समाधान- जब कि इस लोक में वर्तमान तत्त्ववेत्ता भी अपने

आत्मा को असंग अनुभव कर लेते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वरूप से असंग है ही। वे तो अन्य जीवों के समान प्रकृति के आधीन होकर नहीं, किन्तु प्रकृति को अपने आधीन करके ज्ञान सम्पन्न ही अवतीर्ण होते हैं श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय 4 श्लोक 6 यथा

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा

भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय

संभवाम्यात्ममायया।।

अर्थ- मैं अजन्मा और अविनाशी आत्मा होते हुए सब भूतों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को आधीन करके मैं अपनी माया से प्रकट होता हूँ।

4. शंका- आप के सिद्धान्त में परम ज्ञान से हृदय ग्रन्थि का भेदन होता है, परन्तु हमारे सिद्धान्त में कथा श्रवण से ही हृदय ग्रन्थि का भेदन होता है?

समाधान- किसी भी सिद्धान्त में कथा श्रवण से हृदय ग्रन्थि का भेदन नहीं हो सकता है, कथा श्रवण से और हृदय ग्रन्थि उलझती जाती है।

बड़ी प्यारी पंक्ति हैं-

श्रुति पुराण बहु कहउ उपाई।

छूट न अधिक-अधिक अरुझाई।।

(राम चरितमानस)

परन्तु आप अपने इष्ट देव के श्रीमुख से निकले हुए सुसंगत

बचनों की अवहेलना कर रहे हैं, वे तो श्रीमुख से भुजा उठाकर चिल्ला रहे हैं।

''न हि ज्ञानेन सद्रशं पवित्रमिह विद्यते''

अर्थ- अर्थात् संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला नि:सन्देह कुछ भी नहीं है, परन्तु वही ज्ञान आपके लिए द्वैष का विषय बना हुआ है। मैंने तो सुना है कि शरीर-सेवा की अपेक्षा वचन सेवा का महत्व अधिक है परन्तु यदि आप इसी में अपना सौभाग्य समझते है तो आपको धन्यवाद। हमारे सिद्धान्त में हृदय ग्रन्थि का छेदन ज्ञान से होता है।

5. शंका- अद्वैत सिद्धि कार स्वामी मधु सूदन सरस्वती जी महाराज के ये श्लोक प्रसिद्ध-

1. श्रृणु सखि कौतुकमेकं हे सखी!

सुन मैंने नन्द परांगण में एक कौतुक देखा कि वेदान्त सिद्धान्त गौवों की धूल से आच्छादित वहाँ नृत्य करता है।

2. वंशी विभूषित करान्नव- जिसके हाथ में वंशी शोभाय मान है नये बादल के समान शोभा है, पीले वस्त्र धारण किये हुए अरुण बिम्बफल के समान जिनके ओष्ठ हैं, पूर्ण चन्द्र के समान मुखारविन्द है तथा कमल के तुल्य जिनके नेत्र हैं ऐसे श्रीकृष्ण के परे मैं किसी तत्त्व को नहीं जानता?

समाधान- ये दो श्लोक अद्वैत सिद्धिकार स्वामी मधुसूदन सरस्वती के नहीं ये श्लोक भक्त स्वामी मधुसूदन सरस्वती के हैं यह आपने बिना जाने समझे अद्वैत सिद्धि कार लिख दिया ये दोनों श्लोक

स्वामी मधु सूदन सरस्वती के विद्याध्ययन काल के समय बनाये गये श्लोक हैं- उस समय स्वामी मधुसूदन सरस्वती भेद भक्ति के उपासक थे जब उन्होंने बनाये थे क्योंकि दूसरे श्लोक के अन्त में वे कहते हैं- कि कृष्ण के अलावा मै। किसी तत्त्व को नहीं जानता हूँ। ये तो समझते थे कि ज्ञानी तो तत्त्व के उपासक होते हैं उस समय तत्त्व स्वामी मधुसूदन सरस्वती की बुद्धि से बाहर था थोड़ा तत्त्व शब्द पर विचार करते हैं- ऋते ज्ञानात्र मुक्तिः ऋत में किसी ईश्वर की धारणा नहीं है ऋत का अर्थ नियामक तत्त्व नियामक व्यक्ति नहीं नाट परसन बट प्रिंसिपल कोई व्यक्ति नहीं जो नियामक हो कोई तत्त्व है जो नियमन किये चला जाता है जैसे बीज से अंकुर निकलता है ऐसे ऋत से ऋतुए निकलती रहती है ऐसे ऋत से माया और माया का कार्य जगत निकलता रहता है।

"जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा"

श्रीमद भागवत महापुराण

अर्थात् मानव जीवन का फल तत्त्व जिज्ञासा कहा गया है।

तच्चिन्तनं तत् कथनम् अन्योन्यं तत् प्रबोधनम् (श्रुति)

जीव ब्रह्म का एकत्व रूप जो तत्त्व है, तिसका पुनः-पुनः चिन्तन, अधिकारी, मुमुक्षु जनों के प्रति तिस-तिस तत्त्व का कथन अपने समान विद्वान पुरुषों के साथ मिल के तिस-तिस तत्त्व का परस्पर बोधन करे।

एतदेक परत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुद्धाः (श्रुति)

एक ब्रह्मात्म तत्त्व के चिन्तन परायणता है। तिसको विद्वान पुरुष

ब्रह्माभ्यास कहे है। **यत्सारभूतं तदुपासितव्य हंसो यथा क्षीर मी वावु मिश्रम** (स्मृति) जैसे हंस पक्षी जल मिश्रित क्षीर ते क्षीर मात्र को ग्रहण करे है तैसे अधिकारी पुरुषों ने सर्वशास्त्रों का सारभूत जो ब्रह्मात्मरुप अर्थ है सोई ग्रहण करने योग्य है।

जोगिन्ह परम तत्त्वमयभाषा।
सान्त सुद्धसम सहज प्रकासा।।

(रामचरित मानस)

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाण शान्तिप्रदं।
ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्र सेवमनिसं वेदान्त वेद्यं विभुम्

अर्थ– शान्त सनातन अप्रमेय अर्थात् प्रमाणो से परे निष्पाप मोक्ष रूप परम शान्ति स्वरूप, ब्रह्मा, शम्भु, शेष जी से निरन्तर सेवित ''वहतत्त्व'' वेदान्त के द्वारा जानने योग्य है। एक ग्रन्थ है जिस ग्रन्थ का नाम ही तत्त्वानुसंधान है। अर्थात् जिसमें तत्त्व का ही अनुसंधान किया गया है **''अध्यात्मविद्याधिगमः''** जहाँ– प्रत्यक् आत्मा को ब्रह्म करके प्रति पादन वह तत्त्व है। तत्त्वानुसंधान का भाव– अर्थ ब्रह्म आत्मा का जो एकत्व है वही तत्त्व है जो तत्त्व का स्मरण है।

उसका नाम तत्त्वानु संधान है भला अद्वैत सिद्धि जैसे वेदान्त के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ के रचयिता जहां वे भेद की, द्वैत की, द्वय की, गन्ध भी नहीं छोड़ते हैं यह कैसे कहेंगे इन श्लोकों को कदापि नहीं वेदान्त का तो ढिढोरा है। **द्वितीया द्वै भयं भवति** (श्रुति)– दूसरा दुख का कारण है। **अन्योऽसवन्योऽहमस्मि न स वेद यथा पशु** (श्रुति) वह और है मैं और हूँ ऐसा भेद द्रष्टि पुरुष पशु है। **मृत्यो स मृत्युमाप्नोति**

इह नानेव पश्यति (श्रुति)– यहां जो नानत्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता चला जाता है।

उदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्यभयं भवति (श्रुति)

जो तू किंचित भी भेद करता है उसका बहुत दुख होता है।

ईशदप्यन्तरं कृत्वा रौरव नरकं वृजेत (स्मृति)

जो ईश्वर के स्वरूप और अपने स्वरूप भेद करे तो रौरव नरक जाता है। **दी अदर इज हेल्ड**– जो दूसरा है वह नरक है।

न वेद विन्मनुते ब्रह्मतम् (श्रुति)

वेदान्त वाक्यों के ज्ञान से रहित व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जान सकता।

मायामात्र मिदं द्वैतम् (श्रुति)

ये माया मात्र सब द्वैत है।

अतोऽन्य दार्तम् (श्रुति)

ब्रह्मभिन्न सब जगत आर्त कहिए मिथ्या है।

नेह नानास्ति किञ्चन (श्रुति)

ब्रह्म में सब जगत का अत्यन्ताभाव है।

अद्वैतं परमार्थतः (श्रुति)

अद्वैत ब्रह्म परमार्थ सत्य है।

नचेदिह्य वेदिर्महती विनष्टि (श्रुति)

जो आत्मा को नहीं जानता बहुत बड़ी हानि है।

एकमेव अद्वितीय ब्रह्म (श्रुति)

एक ही अद्वितीय ब्रह्म है।

उदासीनत्वे सति बोद्धा साक्षी (श्रुति)

जो चैतन्य निर्विकार उदासीन हुआ बुद्धि आदि का प्रकाशक व साक्षी में ही हूँ। **साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च** (श्रुति) मैं साक्षी चैतन्य मात्र निर्गुण हूँ।

अत्रा यं पुरुषः स्वयं ज्योतिभर्वति (श्रुति)

स्वयं ज्योति, स्व प्रकाश, स्वयं प्रकाश, अर्थात् मैं परमानन्द स्वरूप हूँ मेरे से भिन्न कोई कारण कार्य नहीं है।

साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदा शिवः (श्रुति) जो चैतन्य मात्र साक्षी है वह मैं हूँ। ब्रह्म अद्वैतम् शब्द शास्तं (शास्त्र) ब्रह्म अद्वैत है शब्द शास्त्र।

अहमस्मि परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययः।
इतियस्य स्थिरा बुद्धिः स मुक्तो नात्र संशयः।।

स्मृति

अर्थ– वासुदेव है नाम जिसका ऐसा जो उत्पत्ति, स्थिति, विनाश से रहित ब्रह्म है सो परब्रह्म मै हूँ इस प्रकार स्थिर बुद्धि पुरुष मुक्त ही है।

हय मेध शत सहस्राण्यथा कुरुते ब्रह्मघात लक्षाणि ।।
परमार्थविन्नपुण्यैर्नपापैस्पृश्यतेविमलः।।

अर्थ– अहं ब्रह्मास्मि य प्रकार साक्षात वाला जो तत्त्ववेत्ता पुरुष है। सो कदाचित सत सहस्र अश्वमेध यज्ञ करे अथवा लक्ष्य ब्राह्मणों का हनन करे न पुण्य न पाप से लिपायमान नहीं होता है।

अथ एतदक्षरं गार्गि विदित्वाऽस्माँल्कोकात् स ब्रह्मण (श्रुति)

जो पुरुष एक अक्षर रूप परमात्मा का साक्षात् करके शरीर मरण

को प्राप्त होवे ऐसा तत्त्ववेत्ता पुरुष ब्राह्मण है।

अन्यथा सन्त मात्मानयोऽन्यथा प्रतिपद्यते किं।
तेन न कृतं पापं चौरेणात्माप हारिणा।।

अर्थ- जो पुरुष अकर्त्ता अभोक्ता आत्मा को कर्त्ता भोक्ता जाने तिस आत्मापहारी चोर पुरुष ने कौन सा पाप नहीं किया।

6. शंका- एक श्लोक है वह कहां का है यह तो मुझे पता नहीं लेकिन इसमें जो विविध सम्प्रदायों और का समन्वय है इसको क्या आप भ्रम मानते हैं?

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मैति वेदान्तिनो
बोद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयंयो विदधातु वाच्छित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

समाधान- इस श्लोक का प्रमाण आपने अपने मत की पुष्टि में दिया है, इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि मोक्ष प्राप्ति के अनेक मार्ग हो सकते हैं। इसमें तो नाना मत वालों ने उस एक परमात्मा को नाना नामों से पुकारा है, उस त्रैलोक्यनाथ हरि वांछित फल प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है।

7. शंका –

।। पद ।।

भरोसो जाहि दूसरे सो करों।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलिकल्यान करो।।
करम-उपासन ग्यान वेदमत, सो सब भांति खरो।।

मोहिं तो सावन के अंधहि ज्यों, सूझत हरो-हरे।।
चाटत रहेउँ श्वान पातरि ज्यों, कबहु न पेट भरो।।
सो हों सुमिरत नाम सुधा रस, पेरवत परुसि धरो।।
स्वारथ औ परमारथहू को, नहि कुञ्जरो नरो।।
सुनियत सेतु पयोधि पषानन्हिं, करि कपि कटक तरो।।
प्रीति प्रतीत जहाँ जाकी तहँ, ताको काज सरो।।
मेरे तो माय बाप दोऊ आखर, हो सिसु अरनिअरो।।
संकर साखि जो राखि कहउँ कछु, तो जरि जीह गरो।।
अपनो भलो राम नामहि ते, तुलसिहि समुझि परो।।

क्या तुलसी दास के इस पद को आप अनुभवी नहीं मानते?

समाधान-निम्नलिखित पद का जो आपने प्रमाण दिया है उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ और ये पद शरणागति भाव का पद है इससे मोक्ष सिद्धि मैं नहीं मानता। क्योंकि यही भाव बन्धन की मूल अहंता को काटने में समर्थ नहीं है। केवल उस मूल अहंता को ज्ञान ही काट सकता है। श्री तुलसी दास जी ने राम चरित मानस में अनेक स्थलों पर ज्ञान की महिमा गायन की है- अरण्य काण्ड श्री राम-लक्ष्मण सम्वाद-

धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना।
ज्ञान मोक्ष प्रद वेद वखाना।।

आदि तुलसीदास जी के आराध्य देव श्रीराम अपने अनन्य प्रेमी लक्ष्मण को रामगीता में साक्षात् ज्ञान का उपदेश करते हैं। 1. सबसे पहले अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुसार शास्त्रोक्त कर्म का यथावत पालन करके फिर शमादि साधनों से सम्पन्न हो आत्मज्ञान की प्राप्ति

के लिए तत्त्ववेत्ता, ब्रह्म निष्ठ, आत्मदर्शी सद्‌गुरु की शरण में जाय 2. कर्म देहान्तर की प्राप्ति के लिए स्वीकार किये गये हैं- उनसे पुण्य-पाप, जन्म-मरण का प्रवाह चलता है।
3. संसार का मूल कारण अज्ञान ही है। अज्ञान का नाश मुक्ति का उपाय बताया गया है। अज्ञान का नाश करने में ज्ञान ही समर्थ है कर्म या उपासना नहीं। क्योंकि उस अज्ञान उत्पन्न होने वाला कर्म, अज्ञान का विरोधी नहीं हो सकता। 4. कर्म या उपासना द्वारा अज्ञान का नाश अथवा राग का क्षय हो ही नहीं सकता, इसलिए समझदार को या बुद्धिमान को ज्ञान विचार में तत्पर होना चाहिए। 5. इस प्रकार समस्त इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर निरन्तर आत्मानुसंधान में लगा हुआ बुद्धि मान पुरुष सम्पूर्ण कर्मों का सर्वथा त्याग कर दे इत्यादि। कृपया विचारिये कि तुलसीदास के आराध्य देव श्रीराम अपने परमप्रिय लक्ष्मण को मुक्त कण्ठ से ज्ञान का उपदेश देते हैं तब इस सिद्धान्त की सत्यता में और क्या प्रमाण दिया जाए? लेकिन मैं तो और दूसरा भी प्रमाण देना चाहूँगा तुलसीदास के आराध्य देव श्रीराम के पिता राजा दशरथ भेद-भक्ति से मुक्त नहीं हो पाये तो साधारण जीवों की तो कहना ही क्या है?

लंका काण्ड

चौपाइयाँ -

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये।
तनय विलोकि नयन जल छाये।।
ताते उमा मोच्छ नहि पायो।

दशरथ भेद भगति मन लाये।।
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितइ पितहि दीन्हेउ द्रढ़ ग्याना।।

भगवान श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव नारद से अपना दुख रो रहे हैं-

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध

यथा विचित्र व्यसनाद् भवद्भि विश्वतोभयात्
मुच्येम ह्रञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत।।

अर्थ- हे सुव्रत! अब आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिए जिससे मैं इस जन्म-मृत्यु रूप भयावह संसार से जिसमें दुख भी सुख का विचित्र और मोहक रूप धारण करके सामने आते हैं और अनायास पार हो जाऊँ।

भगवान् कपिल के पिता कर्दम भगवान् कपिल की दो परिक्रमा लगाकर जंगल चले जाते हैं जंगल में किसी सज्जन से बात होती है तो कर्दम जी कहते हैं कि इदम् रूप के परमात्मा से मोक्ष नहीं हो सकता, अहम् रुप का परमात्मा मोक्ष दायक है। यहां तक मैंने अपने मत की पुष्टि युक्ति द्रष्यान्त और प्रमाण से की। अब आप अपने मत की पुष्टि में युक्ति, द्रष्यन्त और प्रमाण सूचित करिये केवल इधर-उधर के पदों से ही काम नहीं चलेगा। इसके साथ इतना ध्यान रखिये-

1. फल शून्य ज्ञात अर्थ का बोधक होने से सो भेद की श्रुति दुर्बल है।

2. फलवान् अज्ञात अर्थ का बोधक होने से सो अद्वैत की श्रुति प्रबल है। अन्य प्रमाण उस समय तक ही प्रमाण्य हो सकते है, जब तक कि वे वेद द्वारा प्रमाणित नहीं हुए। परन्तु वेद-वेदान्त द्वारा

प्रमाणित हो जाने पर उसके विपरीत वे सभी प्रमाण, प्रमाण्य न रह कर अप्रमाण्य ही रह जाते हैं। जिस प्रकार अन्य कोर्टो के फैसले उस समय तक ही प्रमाणित रहते हैं, जब तक 'सुप्रीम कोर्ट' द्वारा प्रमाणित नहीं हुए, परन्तु सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्णय हो जाने पर उसके विपरीत वे कोई भी प्रमाणित नहीं रहते। फिर तो आप के तो कोई भी प्रमाण अब तक विचार की कसौटी पर खरे नहीं उतरे।

तावद् गर्जन्ति शस्त्राणि जम्बुका विपने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यवाद् वेदान्त केशरी।।

अर्थ- अर्थात् शास्त्र जंगलों में गीदड़ों की भांति उस समय तक गर्जना करते हैं जबतक वेदान्त रूपी केशरी सिंह की गर्जना नहीं हुई।

आप अपनी पुष्टि में, कृपया युक्ति, द्रष्टान्त तथा प्रमाण देकर लिखे जिससे विषय अधिक स्पष्ट हो तथा जिज्ञासुओं को अधिक लाभ हो। आपका शुभ चिन्तक।

(नारायणान्द)

।।ॐ।।

दिनांक 15 दिसम्बर, सन् 200

पूज्यपाद।

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती

सादर प्रणाम।

आपने मेरे दो पत्रों के जो उत्तर दिये हैं उससे मैं हृदय से बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ एक अनोखी शान्ति का अनुभव हुआ है। इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद।

वेदान्त के अद्वैत ज्ञान और भेद-भक्ति को स्वतन्त्र साधन और साध्य मानने के सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामी अखण्ड नन्द सरस्वती जी महाराज की श्रीमद्भागवत रहस्य में इस प्रसंग को क्या आप भ्रम मानते हैं? तीसरे स्कन्ध में भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति से कहा है कि ऊँची श्रेणी के सन्त मुझसे एक होना नहीं चाहते, वे मेरी सेवा करते हैं, मेरी आज्ञाओं का पालन करते हैं और आपस में मेरी लीला कहा सुना करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तों को मैं दर्शन देता हूँ और उनसे बातें करता हूँ और उनका सेवक बन जाता हूँ। इन बचनों से यह सिद्ध होता है कि भेद भक्ति स्वयं साध्य और फल स्वरूप ही है।

गीता का प्रतिपाद्य विषय (तत्त्व) श्री भगवान् के द्वारा उपसंहार में कहे गये गुह्य बचन अध्याय 18 श्लोक 65

मन्मना भव मद्भक्तो मद्या जी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसिमे।।

इस श्लोक में उन्होंने अपने प्रति भेद-भक्ति का संकेत किया

निर्गुण ब्रह्म के प्रति नहीं किया बल्कि अपने श्रीकृष्ण स्वरूप के प्रति किया ?

अब आप श्रीमद् भागवत प्रथम स्कन्ध 18 अध्याय का 16

स वै भागवतः परीक्षिद् येनायवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दि तेन भेजे खगेन्द्र ध्वजपाद मूलम्।।

इस श्लोक में शुकदेव जी द्वारा परीक्षित को श्रीमद् भागवत सुनाने के बाद श्रीकृष्ण चरणारबिन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रिय एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय के श्लोक 33-

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोंपासनमत्रनित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभवाद्
विश्वात्मनायत्र निवर्ततेभीः।।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत सुनाने के वाद परीक्षित को शुकदेव जी ने यही आज्ञा दी कि तुम आंख बन्द करके हृदय में केशव का ध्यान करो। अन्य किसी भी उपाय से तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। यही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर हैं? 12 स्कन्ध 3 अध्याय श्लोक नं. 49, 50 यथा

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमाणों ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम्।।

श्रीकृष्ण स्वरूप चिन्मय विग्रह को आप माया संवलित कहकर लोगों को भ्रामने की चेष्टा करते हैं श्री कृष्ण विग्रह को माया संवलित मानना भी भेद भक्ति शास्त्रों के बिना देखे कह सकते हैं?

श्रीकृष्ण विग्रह को आप माया संवलित कहते हैं तो मन्दिर में स्थापित उनकी या अन्य देवी देवताओं की मूर्तियों के सम्बन्ध में आपकी क्या द्रष्टि है। स्पष्ट कीजिए-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं वृज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

इस श्लोक में सगुण-साकार विग्रह की शरण जाने के लिए ही संकेत हैं?

श्रीपाद शंकराचार्य जी ने भी अपने नृसिंह तापनी के भाष्य में स्वीकार किया बताते हैं 'मुक्त' अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्त भजन्ते।'

आपका
कृपाकांक्षी

।। ॐ ।।

श्रीअध्यात्म ब्रह्म विद्या
पीठ, वृन्दावन
25 दिसम्बर सन् 2007

श्रीमन्महोदय

सप्रेम नारायण

आपका विस्तृत पत्र यथा समय प्राप्त हुआ था। आपके इस पत्र में केवल प्रमाणों की भरमार है युक्ति अथवा विचार की गन्ध भी नहीं, आपने कहीं यह स्पष्ट नहीं किया कि बन्धन का स्वरूप क्या है और यह सगुण भेद-भक्ति स्वतन्त्र किस प्रकार से उस बन्धन को काटने में समर्थ होगी। अस्तु अब आप के प्रमाणों पर विचार किया जाता है।

1. शंका– वेदान्त के अद्वैत ज्ञान को और भेद-भक्ति को स्वतन्त्र साधन और साध्य मानने के सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज की श्रीमद् भागवत रहस्य में इस प्रसंग को क्या आप भ्रम मानते हैं?

समाधानः– स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज के भागवत रहस्य ग्रन्थ से यही सिद्धान्त निकाल लेना यह कोई न्याय नहीं होगा। माण्डूक्य प्रवचन ईशावास्थादि अनेक, उपनिषद् तथा गीता आदि उनके सिद्धान्त ग्रन्थों से यदि इसे आप प्रमाणित करते तो अवश्य शिरोधार्य हो सकता था। यहाँ स्वामी अखण्डानान्त सरस्वती जी महाराज अधिकारानुसार भक्तों के लिए भेद-भक्ति की महिमा कथन

करने में प्रव्रत्त हुए हैं, मोक्ष साधन कथन करने में प्रवत्त नहीं हुए महापुरुष जिज्ञासुओं के अधिकारानुसार उनकी रुचि बढ़ाने के लिए अर्थवाद रूप वचन कहा करते हैं, परन्तु इससे उनका वही कमर खोलकर बैठने का नहीं होता।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज एक बार उड़िया बाबा आश्रम में श्रीमद् भागवत सप्ताह कर रहे थे एक दिन किसी प्रसंगवश उन्होंने कहा जीव अपने को भगवान् का भोग्य समझने लगे, इसी का नाम भेद भक्ति है। भेद-भक्ति की द्रष्टि अपने सुख पर कभी नहीं होती। वह तो सर्वदा अपने प्रियतम को ही सुख प्रदान करना चाहता है। कथा समाप्त होने पर सायंकाल जब आश्रम के छत पर उड़िया बाबा के सतसंग में पहुँचे तो इस प्रसंग को लेकर चर्चा चली। उड़िया बाबा बोले। जीव का परम प्रेमास्पद तो अपना आत्मा ही है। वह भ्रम से भले ही किसी अन्य को अपना प्रियतम मानें। जीव चेतन है, अतः वह कभी किसी का भोग्य या द्रश्य नहीं हो सकता। वस्तुतः वही सबका भोक्ता या द्रष्टा है। जो जीव विषय का भोक्ता होता है उसे संसारी कहते हैं जो भगवान् का भोक्ता होता वह भेद-भक्त कहलाता है। इसी प्रकार समाधि का भोक्ता योगी कहा जाता है और जो भोक्ता एवं भोग्य का बाध कर देता है वह ज्ञानी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदान्त के अद्धैत ज्ञान को साधन और साध्य होता है भेद-भक्ति साधन-साध्य कदापि नहीं हो सकती है।

2. शंका- श्रीमद् भागवत के तीसरे स्कन्ध में कपिल ने अपनी माता देवहूति से कहा है कि ऊँची श्रेणी के सन्त मुझसे एक होना नहीं चाहते, वे मेरी सेवा करते हैं, मेरी आज्ञाओं का पालन करते हैं और

आपस में मेरी लीला कहा सुना करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तों को मैं दर्शन देता हूँ उनसे बातें करता हूँ और उनका सेवक बन जाता हूँ इन बचनों से यह सिद्ध होता है कि भेद-भक्ति स्वयं साध्य और फल स्वरूप है?

समाधानः- भगवान् कपिल की माता देवहूति के प्रति उपदेश सर्वथा आप की मान्यता के विपरीत है। कृपया श्रीमद्भागवत स्कन्ध 3 अध्याय 27 पहला और चौथा श्लोक-

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषों नाज्यते प्राकृतैर्गुणै।
अविकाराद कर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत्।।

अर्थ- भगवान कपिल कहते हैं-माता जी! जिस तरह जल प्रतिविम्वित सूर्य के साथ जल के शीतलता, चंचलतादि गुणों का सम्बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृति कार्य शरीर में स्थित रहने पर भी आत्मा वास्तव में उसके सुख-दुखादि। धर्मों से लिपायमान नहीं होता, क्योंकि वह स्वभाव से निर्विकार, अकर्त्ता और निर्गुण है।

श्लोक 4

अर्थेह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा।।

अर्थ- जिस प्रकार स्वप्न में भय-शोकादि का कोई कारण न होने पर भी स्वप्न के पदार्थों में आस्था हो जाने के कारण दुख उठाना पड़ता है, उसी प्रकार भय-शोक, अहं-मम एवं जन्म-मरणादि रूप संसार की कोई सत्ता न होने पर भी अविद्यावश विषयो का चिन्तन करते रहने से जीव का संसार चक्र कभी निवृत नहीं होता।

एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम्।
युञ्जतो नाप कुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित्।।
यदैवमध्यात्मरतः कालेन वहुजन्मना।
सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभुवनान्मुनि।।
मद्भक्तः प्रति बुद्धार्थोमत्प्रसादेन भूयसा।
निः श्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदा श्रयम्।।

अर्थ- उसी प्रकार जिसे तत्त्व ज्ञान हो गया है जो निरन्तर मुझ निर्गुण स्वरूप में मन लगाये रहता है, उस आत्माराम मुनि का प्रकृति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब मनुष्य अनेक जन्मों में बहुत समय तक इस प्रकार आत्म चिन्तन में निमग्न रहता है, तब ब्रह्म लोक तक सभी भोगों में वैराग्य हो जाता है। मेरा वह ज्ञानीभक्त महती कृपा से तत्त्व ज्ञान प्राप्त करके आत्मानुभव के द्वारा सारे संशयों से मुक्त हो जाता है फिर सूक्ष्म शरीर के नाश होने पर अपने स्वरूप भूत कैवल्य संज्ञक मंगलमय पद को प्राप्त कर लेता है फिर वहाँ से लौट कर नहीं आता है। इससे सिद्ध हुआ कि केवल ज्ञान से ही कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति है कर्म व भेद-भक्ति से नहीं।

3. **शंका**- आपने गीता प्रतिपाद्य विषय केवल भेद-भक्ति ही माना है और अपनी मान्यता की पुष्टि में श्लोक यथा-

मन्मनाभव मद्भक्तो यद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

इस श्लोक में उन्होंने अपने प्रति भेद-भक्ति का संकेत किया निर्गुण ब्रह्म के प्रति नहीं किया वल्कि अपने श्रीकृष्ण स्वरूप के प्रति किया?

समाधान- श्रीमद्भगवद् गीता का प्रतिपाद्य विषय केवल अद्धैत ज्ञान ही है यह पहले पत्र में निवेदन कर चुका हूँ अब मैं पुनरुक्ति नहीं करना चाहता हूँ। मैं आपके इन भेद-बचनों का आदर करु, अथवा महर्षि वशिष्ठ जी के बचनों का जिन्होंने श्रीमद्भगवद् गीता अवतीर्ण होने से एक युग पहले त्रेता ही में इसे भगवान् श्रीराम के प्रति उपदेश कर दिया था। योग वशिष्ठ निर्वाण प्रकरण सर्ग 52 में श्रीराम के प्रति कहते हैं- है राम जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश से अर्जुन अपने स्वरूप में जागकर एवं कर्तृत्वाभिमान में छूटकर प्रवाह पतित युद्ध कार्य में प्रवृत्त होगा, उसी द्रष्टि को तुम भी आश्रय करके विचारों। उस समय भगवान् विष्णु दो शरीरों से अवतीर्ण होंगे।

अर्जुन नामधारी विष्णु शरीर प्राकृतभाव से स्थित होकर और अपने चचेरे भाई दुर्योधन के साथ युद्ध में प्रवृत्त होगा। तब दोनों सेनाओं में अपने बन्धुओं को देखकर अर्जुन विषाद को प्राप्त होगा और तब भगवान् विष्णु अपने दूसरे शरीर जो माया का होगा उसे अर्थात् अर्जुन को ज्ञानोपदेश करेंगे।

श्लोक 27 तथा 35

हरिर्देह द्रयोनाथ महीभव तरिष्यति।
देवांशैरखिलैः सार्द्धं नर नारायणं गतैः।।
तमर्जुनभिधं देहं प्राप्त कार्यैक सिद्धये।
हरिर्बुद्धेन देहेन बोधष्यिति राघव।।

वहां सर्ग 52 से 58 तक इसी गीतोपदेश का अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है, जिसमें अर्जुन को ज्ञान जाग्रति कराके और अज्ञान जन्य

मोह को काटकर उसे प्रवाह पतित युद्ध कार्य में जोड़ा गया है और गीता केवल ज्ञान प्रधान रखी गयी है। इसके साथ वहाँ निर्वाण प्रकरण 53 में इसी श्लोक मन्मना भव मद्भक्तो श्लोक में 'मन्मनो और 'माम' को निर्गुण ब्रह्म के अर्थ प्रयुक्त किया गया है।

कालोमहंमद्धैत चाह महं जगत।
मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु।।

यदि थोड़ी देर के लिए गीता का प्रतिपाद्य विषय सगुण रूप भेद-भक्ति ही माना जाय तो निम्न युक्तियों से वह टिक नहीं सकता। (क) सगुण भेद-भक्ति का फल एक मात्र आराध्य देव का दर्शन ही है, जो अर्जुन को गीतोपदेश के पूर्व भी प्राप्त है। (ख) आराध्य देव के साक्षात्कार के चिरकाल बाद भी अर्जुन का न मोह नष्ट हुआ न अज्ञान देखो श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 1 श्लोक 28 तथा 47 अर्जुन उवाच-

द्रष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।।
वेपशुश्च शरीरे मे रोम हर्षश्व जायते।।

अर्थ- हे कृष्ण! इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं, और मुख भी सूखा जाता है और मेरे शरीर में कम्प तथा रोमाञ्च होता है।

संजय उवाच-

एवमुक्त्वार्जुनः सख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोक संविग्न मानसः।।

अर्थ- संजय बोला कि रणभूमि में शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कहकर वाण सहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। तथा अध्याय 2 श्लोक 2 तथा 9

श्री भगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मल मिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्ति कर मर्जुन।।

अर्थ- श्रीभगवान बोले कि हे अर्जुन! तुमको इस विषम स्थल में अज्ञान किस हेतु से प्राप्त हुआ क्योंकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषों से आचरण किया गया है, न स्वर्ग को देने वाला है न कीर्ति को करने वाला है।

संजय उवाच-

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं वभूवह।।

अर्थ- संजय बोला हे राजन! निद्रा को जीतने वाला अर्जुन श्रीकृष्ण महाराज के प्रति इस प्रकार कह कर फिर गोविन्द भगवान् को युद्ध नहीं करूँगा ऐसे स्पष्ट कह कर चुप हो गया (ग) गीतोपदेश एक मात्र भेद-भक्ति प्रधान तभी प्रमाणित हो सकता है जबकि भेद-भक्ति द्वारा मोक्ष की सिद्धि मानी जाय, क्योंकि गीतोपदेश मोक्ष के लिए ही है। (घ) भेद-भक्ति द्वारा मोक्ष की सिद्धि तभी सम्भव हो सकती है जबकि वह कर्म और अज्ञान को भस्म करे क्योंकि बन्धन का मूल एक मात्र 'अज्ञान' और तज्जन्य कर्म ही है। इस भेद-भक्ति द्वारा कर्म और अज्ञान भस्म हो जाते हैं ऐसा गीता के

किसी प्रमाण द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत **'ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्म सात्कुरुते तथा'** ऐसा स्पष्ट प्रमाण है। ज्ञान द्वारा ही अज्ञान भस्म होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- मैं उनके हृदस्थ अज्ञान अंधकार को "भास्वता ज्ञान दीपेन नाशयामि" प्रकाशमान ज्ञान दीपक से नष्ट कर देता हूँ, इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि ज्ञान ही साध्य है भेद-भक्ति कदापि नहीं गीता का प्रतिपाद्य विषय केवल अद्वैत ज्ञान ही है।

(ङ) सूक्ष्म विचार द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि भेद-भक्ति में एकमात्र भाव की ही प्रधानता है, भाव केवल मन बुद्धि का व्यापार है। इसलिए 'भाव' न अपने उपादन मन बुद्धि को ही काट सकता है न सीमित अहं को ही दग्ध कर सकता है, क्योंकि मन-बुद्धि और अहंता के आधार पर ही 'भाव' की सिद्धि है। न वह संचित कर्म संस्कारों को ही काट सकता है, न क्रियमाण को, बल्कि स्वयं अपना फल रखता है। ऐसी अवस्था में किसी प्रकार भावातीत पद में इस भाव की गम नहीं हो सकती। यद्यपि उत्कृष्ट भावों द्वारा कुछ क्षण के लिए अहं लीन हो सकता है, तथापि दग्ध नहीं हो सकता। यह तो एकमात्र ज्ञान साध्य ही है।

4. शंका- श्रीमद्भागवत स्कन्ध एक 18 अध्याय श्लोक 16

स वै भागवतः परीक्षिद् येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्र ध्वज पादमूलम्।।

इस श्लोक में शुकदेव जी द्वारा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत सुनाने के बाद श्रीकृष्णचरणारविन्दो की प्राप्ति होती है।

समाधान-लिखते हैं शुकदेव जी द्वारा परीक्षित् को भागवत सुनने के बाद, यह कैसी वेतुकी बात है पहले स्कन्ध में भागवत सुनाने के बाद यहां तो ऋषियों ने सूत जी से प्रश्न किया है कि शुकदेव जी से जिस ज्ञान को सुनकर परीक्षित ने मोक्ष प्राप्त किया, वह ज्ञान हमें सुनाओ। इससे आपकी मान्यता खण्डित होती है और ज्ञान द्वारा मोक्ष प्रमाणित होता है। **''ज्ञानेन वैयासकि शब्दितेन''** अर्थात शुकदेव जी के जिस ज्ञान से महा भागवत परीक्षित ज्ञान को प्राप्त हुआ।

5. शंका- इसी प्रकार आपके प्रिय एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय 1 श्लोक 33

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य।
पादाम्बुजोपासनमत्रनित्यम्।।
उद्विग्न बुद्धेरसदात्मभवाद्।
विश्वात्मना यत्र निवर्तते भी ।।

अर्थ- कवि योगेश्वर ने कहा हे राजन्! भक्तजनों के हृदय से कभी दूर न होने वाले अच्युत भगवान के चरणों की नित्य निरन्तर उपासना ही इस संसार में परम कल्याण-आत्यन्तिक क्षेम है और सर्वथा भय शून्य है, ऐसा मेरा निश्चित मत है। देह गेह आदि तुच्छ एवं असत् पदार्थों में अहता एवं ममता हो जाने के कारण जिन लोगों की चित्त वृत्ति उद्विग्न हो रही है, उनका भय भी इस उपासना का अनुष्ठान करने पर पूर्णतया निवृत्त हो जाता है।

समाधान- आपका प्रमाण श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध अध्याय 2 का श्लोक 33- आपकी मान्यता को स्पष्ट नहीं करता।

राजा निमि द्वारा कल्याण साधन पूछे जाने पर कवि नाम योगेश्वर ने प्रथम जन्म-मरण रोग का निदान किया है कि आत्मा के अतिरिक्त अनात्म वस्तु में जीव अभिनिवेश करता है कि यह मै। हूँ तभी भय की प्राप्ति होती है और तब वह ब्रह्म से विमुख हो जाता है। इसमें माया को कारण रूप कहा गया है और उससे छूटने का उपाय श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरू की अनन्य शरण ही कहा गया है। श्रीमद्‌भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय दो श्लोक 34

अविद्यमानोऽत्यवभाति हि द्वयो
र्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत् कर्म संकल्प विकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात्।।

अर्थ- हे राजन! सच पूछे तो आत्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। परन्तु न होने पर भी इसकी प्रतीति इसका चिन्तन करने वालों को उसके चिन्तन के कारण उधर मन लगने के कारण ही होती है- जैसे स्वप्न के समय स्वप्न द्रष्टा की कल्पना से अथवा जाग्रति अवस्था में नाना प्रकार के मनोरथो से एक विलक्षण ही सृष्टि दीखने लगती है इसलिए विचारवान् पुरुष को चाहिए कि संसारिक कर्मों के सम्बन्ध में संकल्प-विकल्प करने वाले मन के पार विज्ञान मय कोश पर खड़े होकर मन को द्रष्टा बनकर देखते रहे धीरे-धीरे मन शान्त अर्थात् खो जायेगा और उसे अभय पद परमात्मा की प्राप्ति हो जायेगी। जो आपने कहा था नित्य निरन्तर उपासना ही संसार में परम कल्याण आत्यन्तिक क्षेम है उसका खण्डन हो गया। इस तीसरे

अध्याय के आरम्भ में निमि नाम योगेश्वर ने माया का स्वरूप पूछा तो अन्तरिक्ष नाम योगेश्वर ने श्लोक 3 तथा 16 में बतलाया

अन्तरिक्ष उवाच-

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूँतैमहीभुज।
ससर्जोच्चा वचान्याद्यः स्वमात्रात्म प्रसिद्धये।।
एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्त कारिणी।
त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतु मिच्छसि।।

अर्थ- राजन्! भगवान् की माया का स्वरूप अनिर्वचनीय है, इसलिए उसके कार्यों के द्वारा ही उसका निरुपण होता हैं परमात्मा जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते हैं और उनके विषय-भोग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासकों की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पंच भूतों के द्वारा नाना प्रकार के देव, मनुष्य आदि शरीरो की सृष्टि करते हैं उसी को माया कहते हैं। यह सृष्टि-स्थिति और संहार करने वाली त्रिगुणमयी माया है। इसका हमने आपसे वर्णन किया। अब आप क्या सुनना चाहते हैं उससे भयभीत हो निमि नाम योगेश्वर न माया से तरने का उपाय पूछा तो प्रवुद्ध योगेश्वर ने श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की शरण स्वाध्याय सतसंग आदि वैराग्य की सामग्री से युक्त हो। श्लोक 21 तथा 22

तस्माद् गुरुं प्रपद्यते जिज्ञासुः श्रेय उत्तम।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्।।
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्म दैवतः।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदोहरिः।।

अर्थ- इसलिए जो परम कल्याण का जिज्ञासु हो उसे सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए। सद्गुरु ऐसे हो, जो शब्द ब्रह्म-वेदों के पारदर्शी विद्वान हो जिससे वे ठीक-ठीक समझा सके साथ ही पर ब्रह्म परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हो, ताकि अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई रहस्य की बातों को समझा सकें। उनका चित्त शान्त हो, व्यवहार के प्रपंच में विशेष प्रव्रत्त न हो जिज्ञासु को चाहिए कि सद्गुरु को ही अपना परम प्रियतम आत्मा और इष्टदेव मानें। उनकी निष्कपट भाव से सेवा करें और उनके पास रह कर अपने स्वरूप का बोध कराने वाली साधनों की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे इन्हीं साधनों से आत्मबोध होता है। भगवान् नारायण के परायण होना ही एक मात्र माया से तरने का उपाय बताया। इस पर निमि नाम योगेश्वर ने नारायण का स्वरूप पूछा और पिप्लायन योगेश्वर ने असंग आत्मा ही नारायण का स्वरूप कहा। श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय ३ श्लोक 35 तथा 38

स्थित्युद्भव प्रलय हेतु रहे तुरस्य,
यत् स्वप्न जागरसुषुत्तिषु सद् वहिश्चा।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
संजीवितानि तदेवेहि परं नरेन्द्र।।

अर्थ- पिप्लायन योगेश्वर ने कहा राजन्! जो इस संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का निमित्त कारण और उपादान कारण दोनों ही है। बनने वाला भी और बनाने वाला भी परन्तु स्वयं कारण रहित है, जो स्वप्न जाग्रति और सुषुप्ति अवस्थाओं में उनके साक्षी के

रूप में विद्यमान रहता है और उनके अतिरिक्त समाधि में भी जो ज्यों का त्यों एक रस रहता है, जिसकी सत्ता से सत्तावान् होकर शरीर, इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरण अपना-अपना काम करने में समर्थ होते है।, उसी परम सत्य वस्तु को आप नारायण समझिए।

नात्मा जजान न मरिष्यिति नैधतेऽसौ।
न क्षीयते सवनविद् व्यभिचारिणां हि।।
सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्र।
प्राणो यथेन्द्रिय बलेन विकल्पितम् सत्।।

अर्थ- वह ब्रह्म स्वरूप आत्मा न कभी जन्म लेता है और न मरता है। वह न बढ़ता है और न ही घटता है। जितने भी परिवर्तनशील पदार्थ हैं चाहे वे क्रिया संकल्प और उनके अभाव के रूप में ही क्यों न हो सब की भूत भविष्यत और वर्तमान सत्ता का वह साक्षी है सब में देश, काल, वस्तु से अपरिछिन्न है अविनाशी है। वह उपलब्धि करने वाला अथवा उपलब्धि का विषय नहीं है। केवल उपलब्धि स्वरूप ज्ञान स्वरूप है। जैसे प्राण तो एक ही रहता है स्थान भेद-से उसके अनेक नाम हो जाते हैं वैसे ज्ञान एक होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से उसमें अनेकता की कल्पना हो जाती है।

6 **शंका**- सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत सुनाने के बाद शुकदेवजी ने परीक्षित को यही आज्ञा दी कि तुम आंख बन्द करके हृदय में केशव का ध्यान करो, अन्य किसी उपाय से तुम्हारा कल्याण न होगा यही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है। 12 स्कन्ध अध्याय 3

।। श्लोक ।। 49

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमाणोह्यवहि तस्ततो यासि परां गतिम्।।

श्लोक 50

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः।
आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः।।

अर्थ- जो लोग मृत्यु के निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकार से ऐश्वर्यशाली भगवान का ही ध्यान करना चाहिए। प्यारे परीक्षित! सबके परम आश्रय भगवान अपना ध्यान करने वालों को अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं।

समाधान- आपके इन बचनों से बड़ा आश्चर्य होता है और आपके इस साहस की मुक्त कंण्ठ से सराहना करनी पड़ती है कि आप सत्य को दबाने में कितने कुशल है। क्या इसके आगे स्कन्ध 12 अध्याय 4 और 5 पर आप की द्रष्टि नहीं जाती है जो शुकदेव जी ने परीक्षित को अन्त समय में उपदेश किया है-क्या आप उसको दवा सकते हैं? वह इस प्रकार है। 12 स्कन्ध में चतुर्थ अध्याय में चतुर्विध प्रलयों का वर्णन किया गया है, अर्थात् 1. नित्य प्रलय 2. नैमित्तिक प्रलय 3. प्राकृत प्रलय 4. आत्यन्तिक प्रलय। इस चतुर्थ अध्याय के श्लोक 23 तथा 34

श्लोक 23

बुद्धीन्द्रियार्थरुपेण ज्ञानं भांति तदाश्रयम्।
दृश्यत्वा व्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत्।।

अर्थ- परीक्षित अब आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का स्वरूप बतलाया जाता है। बुद्धि इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में उनका अधिष्ठान, ज्ञान स्वरूप वस्तु ही भासित हो रही है। उन सबका तो आदि भी और अन्त भी। इसलिए वे सब सत्य नहीं है। वे द्रश्य हैं और अपने अधिष्ठान से भिन्न उनकी सत्ता भी नहीं है। इसीलिए वे सर्वथा मिथ्या माया मात्र है।

श्लोक 34

यदैवमेतेन विवेकहेतिना
मायामयाहकारणात्म बन्धनम्।
छित्त्वाच्युतात्मानुभवोऽतिष्ठते
तमाहुरात्यन्तिकमंग सम्प्लवम्।।

अर्थ- प्रिय परीक्षित! जीव जब विवेक के खडग से मायामय अहंकार का बंधन काट देता है तब यह अपने एक रस आत्म स्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है।

(क) जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों बुद्धि की अवस्था में है, परन्तु इनके अधिष्ठान अन्तरात्मा में ये सब नानत्व माया मात्र है।

(ख) जैसे आकाश में बादलों का भाव-अभाव होता है, परन्तु आकाश में कुछ नहीं होता, उसी प्रकार ब्रह्म के आश्रय यद्यपि जगत् का भाव-अभाव होता है, तथापि ब्रह्म में कुछ नहीं होता है।

(ग) जैसे- सुवर्ण के आश्रय कटक-कुण्डलादि नाना रूपों की प्रतीती होती है, परन्तु सुवर्ण में कुछ घट-बड़ नहीं होती उसी प्रकार

ब्रह्म के आश्रय नाना नाम रूप प्रतीती होते हुए भी ब्रह्म में कुछ लेप नहीं करते हैं।

(घ) जिस प्रकार बादल सूर्य से उत्पन्न होता है और सूर्य से ही प्रकाशित फिर भी वह सूर्य के अंश नेत्रों के लिए सूर्य दर्शन बाधक बन जाता है, इसी प्रकार अहंकार ब्रह्म से उत्पन्न होता और उसी से प्रकाशित होता है तथापि वह ब्रह्म के अंश जीव के लिए ब्रह्म दर्शन में बाधक बन जाता है।

(ङ) जीव के लिए विवेक ही एक ऐसा खडग है, जिससे माया मय बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह बन्धन कटते ही जीव आत्माकार के साक्षात्कार में स्थिति हो जाता है। ज्ञान जन्य आत्मा की यह माया मुक्तस्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय है और यही मोक्ष है। श्रीमद्भागवत 12 स्कन्ध के अध्याय 5 में शुकदेव जी का परीक्षित के प्रति अन्तिम उपदेश संक्षेप में सुन लीजिए श्लोक-2

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशु बुद्धिमिमां जहि।
न जात प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं नक्षयसि।।

अर्थ- हे राजन्! अब तुम यह पशुओं की सी अविवेक मूलक धारणा छोड़ दो कि मैं मरूँगा जैसे शरीर पहले नहीं था और अब पैदा हुआ और फिर नष्ट हो जायेगा, वैसे तुम पहले नहीं थे तुम्हारा जन्म हुआ तुम मर जाओगे यह बात नहीं है। शरीर के समान तुम्हारी उत्पत्ति नहीं हुई है और शरीर के समान तुम्हारा नाश भी नहीं होगा।

(क) जैसे- आग लकड़ी में रहती हुई लकड़ी से असंग है और लकड़ी के उत्पत्ति नाश से उसका नाश नहीं होता, वैसे-देहादिक के

उत्पत्ति नाश से तुम्हारा नाश नहीं होता।

(ख) स्वप्नावस्था में ऐसा दिखता है कि मेरा सिर कट गया मैं मर गया और जलाया जा रहा हूँ परन्तु ये सब शरीर की अवस्थायें है आत्मा की नहीं। द्रष्टा-आत्मा तो इन सब अवस्थाओं से परे है, जन्म-मृत्यु से रहित शुद्ध बुद्ध परमतत्त्व रूप है।

(ग) जैसे-घट के फूट जाने पर आकाश पहले की भांति अखण्ड रहता है, परन्तु घटाकाशता की निवृत्ति हो जाने पर लोगों को ऐसा जान पड़ता है कि वह महाकाश में मिल गया है, वास्तव में तो वह सदा मिला हुआ था। वैसे ही देहपात हो जाने पर तत्त्ववेत्ता के सम्बन्ध में लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि जीव ब्रह्म हो गया। वास्तव में वह सदा ब्रह्म था ही, उसकी अब्रह्मता तो कल्पना मात्र ही थी।

(घ) प्रिय परीक्षित! इस प्रकार तुम अपनी विशुद्ध विवेकवती बुद्धि को परमात्म चिन्तन से भरपूर कर लो और स्वयं ही अपने अंतस्थ में स्थित परमात्मा का साक्षात्कार करो। देखो तुम मृत्युओं की भी मृत्यु हो तुम स्वयं ईश्वर हो। अजी तक्षक की तो बात ही क्या? मृत्युओं के समूह भी तुम्हारे पास न फटक सकेंगे तुम यही खरा चिन्तन करो कि मैं सर्वाधिष्ठान पर ब्रह्म हूँ सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ। इत्यादि इस प्रकार तुम अपने आप को वास्तविक एकरस अनन्त अखण्ड स्वरूप में स्थित कर लो। श्रीमद्भागवत के 12 स्कन्ध के 5 अध्याय का 11 श्लोक

अहं ब्रह्म परमधाम ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले।।

अर्थ- अब परीक्षित का भी स्वानुभव सुन ले-भगवन् आप करुणा के मूर्तिमान स्वरूप है। अब मैं आप के द्वारा परम अनुग्रहीत और कृत्य-कृत्य हो गया हूँ। अब मैं तक्षकादि अथवा मृत्युओं के दल- के दल से भी अभय हुआ हूँ। अब मैं आपके द्वारा अभय रूप निर्वाण ब्रह्म में प्रविष्ट हो गया हूँ। आपके द्वारा उपदेश किये हुए ज्ञान-विज्ञान द्वारा मेरा अज्ञान सर्वदा के लिए नष्ट हो गया है। श्रीमद् भागवत स्कन्ध 12 अध्याय 6 श्लोक 5 तथा 7

।। श्लोक ।।

भगवस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न विभेम्यहम्।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शित त्वया।।
अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञान-विज्ञान निष्ठ्या।
भवतादर्शितम् क्षेमं परं भगवतः पदम्।।

इसी 6 अध्याय में सूत जी के शौनकादि ऋषियों के प्रति वचन भी सुन लीजिए श्लोक 9

परीक्षिदपि राजर्षिरात्म न्यात्मानमात्मना।
समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः।।

राजर्षि परीक्षित ने किसी वाह्य सहायता के बिना स्वयं ही अपने अन्तरात्मा को परमात्मा चिन्तन में समाहित किया। उस समय उनका श्वांस-प्रश्वास भी नहीं चलता था ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई वृक्ष का ठूंठ हो। उनकी आसक्ति और संशय पहले ही मिट चुके थे। अब वे ब्रह्म आत्मा की एकता रूप महायोग में स्थित होकर ब्रह्म स्वरूप हो गये। इन सभी बातों से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो ही गया है

कि समस्त उपनिषदों का सार ब्रह्म और आत्मा का एकत्व रूप अद्वितीय सद्वस्तु पर ब्रह्म ही है वही श्रीमद् भागवत का प्रति पाद्य विषय है। एवं इसके निर्माण का प्रयोजन एक मात्र कैवल्य मोक्ष है। जैसा कि श्रीमद्भागवत स्कन्ध 12 अध्याय 13 श्लोक में कहा गया है–

सर्व वेदान्तसारंयद् ब्रह्मात्मैकत्व लक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम्।।

अब आप कृपया सत्यता पूर्वक अपने अन्दर जाकर देखिए कि श्री शुकदेव जी ने परीक्षित को सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत सुनाने के बाद हृदय में केशव का ध्यान करने के लिए कहा या ब्रह्मात्मैकत्व रूप आत्मानु संधान पर मोक्ष की सिद्धि निर्भर की है। खेद का विषय यह है कि अपना प्रमाण प्रस्तुत करते समय न तो आप अध्याय के प्रसंग ही समझते है न पूर्वापर ही द्रष्टि डालते हैं। केवल अपने मत के अनुकूल जो श्लोक द्रष्टि गोचर हुआ, किसी विचार के विना झट उसको प्रमाण पकड़ लिया। इसी त्रुटि के कारण अब तक आपके कोई प्रमाण विचार की कसौटी पर खरे नहीं उतरे। जिस केशव को हृदय में धारण करने के लिए कहा गया है, मन नाम रूप में फसा रहने के कारण, वह केशव वास्तव में क्या है? इसको तो आप समझ ही क्या सकते हैं? वास्तव में जो आत्यन्तिक प्रलय अध्याय 4 में कही गयी है और जिसमें प्रलय होती है वही सत् अधिष्ठान केशव का स्वरूप है, और उसी को हृदय में धारण करने के लिए श्री शुकदेव जी का आदेश है। परन्तु इस परम तात्पर्य में प्रवेश न पा सकने के कारण आप तो श्याल-सारमेय न्याय से व्यर्थ विवाद पर उतर पड़े हैं। इसी विषय में श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 7 श्लोक 24 तथा 25 में

भगवान् केशव अपने मुख से कहते हैं- श्लोक

अत्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्तेमाम बुद्धयः।
परं भावमजानन्तों ममाव्ययमनुत्तम्।।

अर्थ- ऐसा होने पर भी सब मनुष्य मेरा भजन नहीं करते भजन का अर्थ है ब्रह्मात्मै कत्व द्रष्टि ही अखण्ड भजन है। बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात् जिससे उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे अविनाशी परम भाव को अर्थात् अजन्मा अविनाशी हुआ भी अपनी माया से प्रकट होता हूँ। ऐसे प्रभाव को तत्त्व से न जानते हुए मन इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्द घन परमात्मा को मनुष्य की भांति जन्मकर व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं।

25 श्लोक

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोकोमामजमव्ययम्।।

अर्थ- तथा अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ इसलिए यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्म रहित अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है- अर्थात् मेरे को जन्मने मरने वाला समझता है। इसी प्रकार केशव, वासुदेव शब्द सर्वदा इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कृपया ध्यान रखिये निर्बुद्धि, मूढ़ ये शब्द मेरे नहीं है किन्तु स्वयं भगवान् केशव के श्रीमुख से निकले हुए वचन है।

अहमस्मि परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययः।
इतियस्य स्थिरा बुद्धिः स मुक्तो नात्र संशयः ।।

अर्थ- वासुदेव है नाम जिसका ऐसा जो उत्पत्ति विनाश रहित

ब्रह्म है सो परब्रह्म मैं ही हूँ इस प्रकार स्थिर बुद्धि पुरुष मुक्त ही है। किसी भी ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय के निर्णय के लिए उपकृम और उपसंहार की एकरूपता ही मुख्य साधन माना गया है।

अर्थात् अमुक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय क्या है, इसका निश्चय करने के लिए उस ग्रन्थ के आरम्भ (उपकृम) में जो विषय कहा गया है और ग्रन्थ के अन्त में (उपसंहार) में वही जो विषय कहकर ग्रन्थ की समाप्ति की गई है, वही विषय उस ग्रन्थ का प्रतिपाद विषय बन सकता है ऐसा सभी शास्त्रकारों का मत है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के मध्य में जो कुछ कहा गया है वह विषय या तो साधन रूप हो सकता है। या अभ्यास रूप अथवा अर्थवाद रूप या काव्यरूप हो सकता है प्रतिपाद्य विषय नहीं हो सकता। इसी द्रष्टि को ध्यान में रखकर यदि श्रीमद् भागवत के प्रतिपाद्य विषय का विचार किया जाय तो एकमात्र अद्वैत ज्ञान ही इसका प्रतिपाद्य विषय बन सकता है भेद-भक्ति कदापि नहीं। वह इस प्रकार-

श्रीमद् भागवत के प्रथम स्कन्ध प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक लीजिए। **''जन्माद्यस्य यतोऽन्ययादि तरतः''** अर्थात् अभिन्ना निमित्तोपादान कारण स्वरूप जिस परब्रह्म से इस जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते है **''तेजोवारिम्रदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा''** जैसे सूर्य रश्मियों में जल, जल में स्थल और स्थल में जल के समान जिस अधिष्ठान सत्ता में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी सत्यवत् प्रतीत हो रही है, **''धाम्नास्वेन सदा निरस्त कुहकम्''** अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति द्वारा माया से सर्वथा मुक्त रहने वाले **''सत्यंपरंधीमहि''** अर्थात् उस परम सत्य

का हम ध्यान करते हैं।

2. इसी अध्याय के तीसरे श्लोक में श्रीमद्भागवत को **''निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्''** कहा गया है कि अर्थात् वेद रूपी कल्प वृक्ष का यह पका हुआ फल माना गया है। वेद का पका हुआ फल वेदान्त उपनिषद् ही हो सकता भेद–भक्ति कदापि नहीं।

3. इसी स्कन्ध के दूसरे अध्याय श्लोक 3 में अपनी कथा का आरम्भ करते हुए सूत जी श्रीमद्भागवत के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह **''स्वानुभावमखिल श्रुति सारम्''** अर्थात् आत्म स्वरूप का अनुभव कराने वाला समस्त वेदों का सार है तथा-

''एकमध्यात्मदीपमति तितीर्षितां तमोऽन्धम्''

अर्थात घोर अन्धकार से पार होने की इच्छा वालों के लिए एक मात्र ज्ञानमय दीपक है। स्मरण रहे कि समस्त वेदों का सार एक मात्र वेदान्त ज्ञान ही हो सकता है।

4. इसी अध्याय के दशवे श्लोक में

''जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा''

अर्थात् मानव जीवन का फल तत्त्व जिज्ञासा कहा गया है उस तत्त्व जिज्ञासा का प्रकार इसी अध्याय के 13 तथा 19 इस रीत से कहा गया है प्रथम वर्ण आश्रम धर्म का पालन और इसके फल अशुभ वासनाओं का त्याग एवं तमोगुण, रजोगुण की निवृत्ति तदन्तर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों का संग महापुरुषों के सान्निध्य में यह घटना घटित होगी–

भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्त संगस्य जायते।।
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि द्रष्ट एवात्मनीश्वरे।।

अर्थ– आत्मस्वरूप भगवत् तत्त्व का नित्य साक्षात्कार होते ही हृदय की चिज्जड़ ग्रन्थि कट जाती है, सब संशय मिट जाते हैं और कर्म बन्धन क्षीण जाता है नष्ट हो जाता है। यही अद्वैत ज्ञान श्रीमद्भागवत का उपक्रम अर्थात प्रारम्भिक विषय है। अब यदि इस ग्रन्थ की परि समाप्ति (उपसंहार) पर द्रष्टि पात किया जाय तो श्री शुकदेव जी जीव–ब्रह्म के अभेद ज्ञान में ही अपने उपदेश की समाप्ति अर्थात् उपसंहार करते हैं। श्लोक 12 स्कन्ध का

सर्व वेदान्त सारं यद् ब्रह्मात्मैकत्व लक्षणम्।
वस्त्वद्धितीयं तन्निष्ठं केवल्यैक प्रयेजनम्।।

अर्थ– आप लोग जानते हैं कि समस्त उपनिषदों का सार है ब्रह्म और आत्मा का एकत्व रूप अद्वितीय सद्वस्तु वही श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माण का प्रयोजन है एक मात्र कैवल्य मोक्ष।

''सत्यं परं धीमहि''

अर्थात् उस परम सत्य का हम ध्यान करते हैं।

7. शंका– श्रीकृष्ण स्वरूप चिन्मय विग्रह को आप माया संवलित कहकर लोगों को भ्रमाने की चेष्टा करते हैं श्रीकृष्ण विग्रह को माया संवलित मानना भी भक्ति शास्त्रों को देखे बिना कह सकते हैं?

समाधान– ''श्रीकृष्ण विग्रह मया संवलित है'' ऐसा आपके वचनानुसार मैंने ही नहीं कहा। किन्तु स्वयं तुम्हारे आराध्य देव भगवान् श्री कृष्ण के वचनानुसार श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 4 श्लोक 6 में तो स्पष्ट कह देते हैं कि–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतनामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।

अर्थ- मैं अजन्मा और अविनाशी आत्मा होते हुए और सब भूतों का ईश्वर होते हुए भी प्रकृतिक अधीन होकर नहीं प्रकृति को आधीन करके मैं अपनी माया से प्रगट होता हूँ।

8. शंका- श्रीकृष्ण विग्रह को आप माया संवलित कहते हैं, तो मन्दिर में स्थापित देवी-देवतों की मूर्ति के विषय में तुम्हारी क्या द्रष्टि है?

समाधानः- आप के आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध अध्याय 84 श्लोक।।, 12 तथा 13 देखिाए क्या कहते हैं-

श्लोक

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलमयाः।
ते पुनत्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः।।
नाम्निर्न सूर्यो न च चन्द्र तारका।
न भूर्जलं रवं श्वसनोऽथ वाङ्मनः।।
उपासिता भेद कृतो हरन्त्यद्यं।
विपश्चियतो घ्नन्ति मुहूर्त सेवया।।

अर्थ- भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाये ही देवता नहीं होती सन्त पुरुष ही वास्तव में तीर्थ और देवता है, क्योंकि उनका बहुत समय तक सेवन किया जाय। तब वे पवित्र कर सकते हैं परन्तु

सन्त पुरुष तो दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी-जल-आकाश-वायु-वाणी और मन के अधिष्ठातृ-देवता उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते क्योंकि उनकी उपासना से भेद बुद्धि का नाश नहीं होता वह और बढ़ती है। परन्तु घड़ी दो घड़ी भी ज्ञानी महा पुरुषों की सेवा की जाय तो वे सारे पाप ताप मिटा देते हैं, क्योंकि वे भेद बुद्धि के विनाशक हैं।

यस्यात्मबुदिः कुणपे त्रिधातु के
स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धि सलिले न कर्हिचज्
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः।।

अर्थ- जिसकी इस शरीर में आत्म बुद्धि है स्त्री आदि में आत्मीय बुद्धि प्रतिमा आदि जिसकी देवता बुद्धि जलादि में जिसकी तीर्थ बुद्धि, वह व्यक्ति बुद्धिमान मनुष्यों में गधा है। अपने आराध्य देव की वाणी और सुन लीजिए श्रीमद्‌भागवत 10 स्कन्ध अध्याय 86 श्लोक का 51 तथा 52-

ब्रह्मस्तेऽनुग्रहार्थाय सम्प्राप्तान् विद्धयमून् मुनीन्।
संचरन्तिमयालोकान् पुनन्तः पादरेणुभिः।।
देवा क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन स्पर्श नार्चनैः।
शनैःपुनन्ति कालेन तदप्यर्हन्तमेक्षया।।

अर्थ- भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-श्रुतदेवः ये बड़े-बड़े ऋषि मुनि तुम पर अनुग्रह करने के लिए यहाँ पधारे हैं। ये अपने चरण

कमलों की धूल से लोगों और लोकों को पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरण कह रहे हैं। देवता पुण्य क्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन स्पर्श अर्चन आदि के द्वारा धीरे-धीरे दिनों में पवित्र करते हैं, परन्तु बुद्ध पुरुष अपनी द्रष्टि से ही सबको पवित्र कर देते हैं। यही नहीं देवता आदि में जो पवित्र करने की शक्ति है, वह भी उन्हें सन्तों द्रष्टि से उन्हें प्राप्त होती है।

श्रुति कहती है (मैत्रोय्योपनिषद्)

पाषाण लोहर्माण मृण्यमय विग्रहेषु
पूजा पुनर्जनन भोगकरी मुमुक्षो।
तस्माद्यतीस्वहृदयार्जनमेवकुर्याद्
बाह्यार्चनं परिहरेद पुनर्भवाय।।

अर्थ- पत्थर- सोना- मिट्टी की बनाई गयी मूर्तियों की पूजा मोक्ष की इच्छा वाले को फिर जन्म और भोग कराने वाली होती है, इससे फिर जन्म न लेना पड़े इस उद्देश्य से मोक्ष की इच्छा वाले को ऐसी बाहर की पूजा त्याग कर हृदय में स्थित आत्म स्वरूप भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामिच्छतिदुर्मतिः।
शिलामृत दारु चित्रेषु देवता बुद्धि कल्पिता।।

(आद्यशंकराचार्य)

अर्थ- हे दुर्मति मूर्ति पूजक! तू अपने घर में रखी हुई खीर को छोड़कर भीख की इच्छा करता है, लगता है तभी तुझने हृदय में स्थिति परमात्मा को छोड़कर पत्थर की शिला मिट्टी लकड़ी के

चित्रों को देवता मान रखा है।

मृच्छिला धातु क्षार्वादि मूर्त्तावीश्वरः बुद्धयः।
कल्पयन्ति तमसामूढ़ा परां शान्ति न यान्तिते।।

(महानिर्वाणतन्त्र)

अर्थ– मिट्टी पत्थर सोना चांदी, पीतल आदि की मूर्ति में लोग ईश्वर बुद्धि रखते हैं, उनको भगवान मानते है, वे मूढ़ लोग तप में दुखी होते हैं और कभी परम शान्ति को प्राप्त नहीं होते हैं।

दोहा–

कविरन भगति विगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अन्तर में विष राखि के अम्रत डारा खोय।।
पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूंजू पहाड़।
ताते तो चक्की भली पीस खाय संसार
कंकड़ पत्थर जोर के मस्जिद लिया बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।

(कबीर वाणी)

हरि हिरदे ढूढत फिरै जल थल प्रतिमा वाम।
ज्यो कन्धे लरिका लिए देत ढिढोरा गाम।।
नकली मन्दिर मस्जिदों में जाये सद अफसोस है।
कुदरती मस्जिद का साकिन दुख उठाने के लिए।।
मन्दिर मस्जिद चर्च सब बन गई दुकानें शोषण की।
शेर के बच्चे जहाँ गीदड़ बनाये जाते हैं।।
नहीं पाठ नहीं पत्थर पूजा नहीं माला सटकाना है।

न संस्कार त्याग, यज्ञ तीरथ न कहीं जाना आना है।
ज्ञान ही केवल मोह नाश करे ज्ञान से मोक्ष है भाई।।
मोह का क्षय ही मोक्ष जगत में न कुछ खोना पाना है।

(क) हे हिन्दू अभी तू मरा नहीं है, लेकिन मृत्यु शय्या पर जरूर है क्यों कि तूने नव नूतन सत्य को छोड़कर पाषाण सत्य को अपना लिया है तभी तो सत्य के लिए कोई मन्दिर न बनाकर पत्थरों के लिए मन्दिर पर मन्दिर बनाये चले जाते हैं।

(ख) भारत में वैज्ञानिक बौद्धिक क्षमता है लेकिन अंध श्रद्धा भेद-भक्ति ने भूतपूर्व महापुरुषों या पूर्व के भूतों ने उसे नष्ट प्राय: कर दिया है अगर भारत को पुन: वैज्ञानिक क्षमता हासिल करनी है तो उसे आश्रमों में मन्दिरों में पत्थर पूजा की जगह सत्य की पूजा शुरू करनी होगी। हमें सत्य के अतिरिक्त किसी से समझौता नहीं करना है फिर भारत सचमुच विज्ञान सम्मत आध्यात्मिक गुरु हो सकेगा।

(ग) ईश्वर कोई वाह्य सत्य नहीं है! वह तो स्वयं के ही परिष्कार की अन्तिम चेतना अवस्था है। उसे पाने का अर्थ स्वयं वही हो जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

(घ) भगवान् को मानने और भगवान् को जानने में बहुत बड़ा अन्तर हैं क्योंकि मानना मन से होता है और जानना प्रज्ञा से होता है भगवान को मानना आत्म पतित बने रहने का कारण हे जबकि जानना स्वयं ही भगवान हो जाने का है।

(ङ) मनुष्य भी कैसा आत्म वंचक है अपने ही हाथों बनाई मूर्तियों को भगवान् समझ स्वयं को धोखा दे लेता है मन से रचित शास्त्रों को सत्य समझ कर तृप्ति कर लेता है।

(च) सभी धर्म अंध विश्वास पर टिके हुए हैं, अंधा हुए बिना कोई इन पर विश्वास नहीं कर सकता जिसे आंख उपलब्ध हो जाती है वह इनसे बाहर हो जाता है जबकि अन्धे इन्हें मजबूती से पकड़ लेते हैं और वे ही ऐसे धर्म के रक्षक भी होते हैं, लेकिन शेर दिल तो वस्तुत: वे लोग हैं जो सत्य के अतिरिक्त किसी से समझौता नहीं करते हैं।

(छ) पुजारी- पूजा+अरि: (अर्थात् पूजाया: अरि) पूजाया: अर्थात् पूजा का अरि अर्थात् दुश्मन जो वास्तविक सत्य की पूजा का 'अरि' अर्थात् दुश्मन हो वह पुजारी है क्योंकि वास्तविक सत्य को असली भगवान् को जो प्रत्येक का अपना ही आत्मा है उसे और उसकी वास्तविकता को छिपा लेता है और नकली भगवान् जो कि मनुष्य द्वारा निर्मित है कि उसे मनुष्य के सामने पेश कर देता है। शायद यही कारण रहा हो कि पूर्व महापुरुषों ने उसे पूजक न कह कर ठीक उल्टा (पुजारी) वास्तविक सत्य की पूजा का 'अरि' अर्थात् दुश्मन कहा इसलिए पुजारी नहीं पूजक बनो।

देहो देवालय: प्रोक्त: स जीव: केवल: शिव:।
त्यजेद् अज्ञान निर्माल्यं साक्षी भावेन् पूज्यते।।

(आत्म पुराण)

अर्थ- देह देव मन्दिर है जीव ही साक्षात् अपना स्वरूप अर्थात् ब्रह्म है अज्ञान को छोड़कर साक्षी भाव से पूजन करना चाहिए साक्षी भाव को थोड़ा समझ लें अकेली एक क्रिया है, जो मन की नहीं है और वह साक्षी भाव है। और केवल साक्षीभाव ही मनुष्य को आत्म

में प्रतिष्ठा दे सकता है। क्योंकि वही हमारे जीवन में एक सूत्र है जो मन का नहीं है। आप रात को स्वप्न देखते हैं। सुबह जागकर पाते हैं कि स्वप्न था और मैंने समझा कि सत्य है। सुबह स्वप्न तो झूठा हो जाता है, लेकिन जिसने स्वप्न देखा था, वह झूठ नहीं होता। उसे आप मानते हैं कि जिसने देखा था, वह था जो देखा था, वह स्वप्न था। आप बच्चे थे, युवा हो गये, बचपन तो चला गया, युवा पन आ गया, युवावस्था भी चली जायेगी, बुढ़ापा आ जायेगा। लेकिन जिसने बचपन को देखा, युवावस्था को देखा, बुढ़ापे को देखेगा, वह न आया और न गया वह मौजूद रहा। सुख आता है, सुख चला जाता है। दुख आता है, दुख चला जाता है। जो दुख को देखता है सुख को देखता है, वह मौजूद बना रहता है। तो हमारे भीतर दर्शन की जो क्षमता है, वह सारी स्थितियों में मौजूद बनी रहती है। साक्षी का जो भाव है, वह जो हमारे देखने की क्षमता है, वह मौजूद बनी रहती है। वही क्षमता हमारे भीतर अविच्छिन्न रूप से, अपरिवर्तित रूप से मौजूद है। आप बहुत गहरी नींद में हो जायें तो भी सुबह कहते हैं, रात बहुत गहरी नींद आई रात बड़ी आनन्द पूर्ण निद्रा हुई। आपके भीतर किसी ने उस आनन्दपूर्ण अनुभव को जाना, उस आनन्दपूर्ण सुषुप्ति को भी जाना। तो आप के भीतर जानने वाला, देखने वाला जो साक्षी है वह सतत मौजूद है। मन सतत परिवर्तनशील है और साक्षी सतत अपरिवर्तनशील है। इसलिए साक्षी भाव मन का हिस्सा नहीं हो सकता। और फिर मन की जो -जो क्रियायें हैं, उनको भी आप देखते हैं। आप के भीतर विचार चल रहे है। आप शान्त बैठे जायें, आपको विचारों का अनुभव होगा कि वे चल रहे हैं। आप को दिखाई पड़ेंगे।

अगर शान्तभाव से देखेंगे, तो वे विचार वैसे ही दिखाई पड़ेंगे, जैसे रास्ते पर चलते हुए लोग दिखाई पड़ते हैं। फिर अगर विचार शून्य हो जायेंगे, विचारशान्त हो जायेंगे तो यह दिखाई पड़ेगा कि विचार शान्त हो गये हैं, शून्य हो गये हैं, रास्ता खाली हो गया है। निश्चित ही जो विचारों को देखता है वह विचार से अलग होगा। वह जो हमारे भीतर देखने वाला तत्त्व है, वह हमारी सारी क्रियाओं से, सबसे भिन्न और अलग है। जब आप श्वांस को देखेंगे, श्वास को देखते रहेंगे, देखते–देखते श्वास शान्त होने लगेगी। एक घड़ी आयेगी, आप को पता ही नहीं चलेगा कि श्वास चल भी रही है या नहीं चल रही है। जब तक श्वास चलेगी, तब तक दिखाई पड़ेगा कि श्वास चल रही है। और जब श्वास नहीं चलती हुई मालूम पड़ेगी, तब दिखाई पड़ेगा कि श्वास नहीं चल रही है। लेकिन दोनों स्थितियों में देखने वाला पीछे खड़ा हुआ है। यह जो साक्षी है यह जो अवेयरनेस है पीछे यह जो बोध का बिन्दु है, यह बिन्दु मन के बाहर है, मन की क्रियाओं का हिस्सा नहीं हैं क्योंकि मन की क्रियाओं को भी यह जानता है। जिसको हम जानते है, उससे हम अलग हो जाते हैं। जिसको भी आप जान सकते हैं, उससे आप अलग हो सकते हैं। क्योंकि आप अलग है ही, नहीं तो उसको जान ही नहीं सकते। जिसको आप देख रहे हैं, उससे आप अलग हो जाते हैं। क्योंकि जो दिखाई पड़ रहा है। वह अलग होगा और जो देख रहा है, वह अलग होगा। साक्षी को आप कभी नहीं देख सकते। आप के भीतर जो साक्षी है, उसको आप कभी नहीं देख सकते। उसको कौन देखेगा ? जो देखेगा वह आप हो जायेंगे और जो दिखाई पड़ेगा वह अलग हो जायेगा। साक्षी आपका

स्वरूप है आप की नियति है आपकी निजता है आपका स्वयं होना है। उसे आप देख नहीं सकते। क्योंकि देखने वाला, आप अलग हो जायेंगे तो फिर वही साक्षी होगा जो देख रहा है। जो द्रश्य बन जायेगा वह फिर आत्मा नहीं रहेगी। साक्षीभाव जो है वह आत्मा में प्रवेश का उपाय है। असल में पूर्ण साक्षी की स्थिति को उपलब्ध हो जाना, स्वरूप को उपलब्ध हो जाना है। वह मन की कोई क्रिया नहीं है। जो भी मन की क्रियायें है, वे फिर ध्यान नहीं होगी। इसलिए मैं जप को ध्यान नहीं कहता हूँ। वह मन की क्रिया है। किसी मन्त्र का स्मरण करने को ध्यान नहीं कहता हूँ। वह भी मन की क्रिया हैं किसी पूजा को, किसी पाठ को ध्यान नहीं कहता हूँ। वे सब मन की क्रियायें हैं सिर्फ एक आपके भीतर रहस्य का मार्ग है जो मन का नहीं है वह साक्षी का भाव गहरा होता जायेगा, आप मन के बाहर होते जायेंगे। जिस क्षण साक्षी का भाव पूरा प्रतिष्ठित होगा आप पायेंगे मन नहीं है जो है वही आपका स्वयं का होना है इसी को पाना था।

अंधेरा हटाना हो, तो प्रकाश लाना होता है। और मन को हटाना हो, तो ध्यान को लाना होता है। मन को नियंत्रित नहीं करना है, वरन जानना है कि वह है ही नहीं। यह जानते ही उससे मुक्ति हो जाती है। यह जानना साक्षी चैतन्य से होता है यही साक्षी चैतन्य ध्यान है। मन के साक्षी बने। जो है– उसके साक्षी बने। कैसे होना चाहिए इसकी चिन्ता छोड़ दें। जो है, जैसा है, उसके प्रति जागे, जागरुक हो। कोई निर्णय न लें, कोई नियंत्रण न करें, किसी संघर्ष में न पड़े। बस, मौन होकर देखें। देखना ही यह साक्षी होना ही मुक्ति बन जाता है। साक्षी बनते ही चेतना द्रश्य को छोड़ द्रष्टा पर स्थिर हो जाती है। इस स्थिति

में अकंप प्रज्ञा की ज्योति उपलब्ध होती है। और यही ज्योति मुक्ति है यही साक्षी भावेन पूज्येत का अर्थ हुआ।

9. शंका– श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 18 श्लोक 66

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं वृज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षष्यिामि मा शुचः।।

इस श्लोक में सगुण-साकार विग्रह की शरण जाने के लिए संकेत किया गया है? अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि केवल एक मेरी शरण को प्राप्त हो मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा तू शोक मत कर?

समाधान– इस श्लोक में सगुण-साकार विग्रह के शरण जाने को कदापि नहीं कहा गया हहै क्योंकि सगुण-साकार विग्रह के शरण तो अर्जुन बहुत दिनों से रह रहा था। गीता अध्याय 2 श्लोक 7 में कहा है–

''शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्''

अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ इसलिए आपके शरण हुए मेरे को शिक्षा दीजिए। श्रीकृष्ण अपने सगुण-साकार विग्रह को मायिक मानते हैं। माया शब्द की व्याख्या है सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीयत्व मीन्स मिथ्यात्व-काल्पनिक फिर श्रीकृष्ण अपने काल्पनिक के शरण हो जा ऐसा नहीं कहते हैं। उनका जो वास्तविक निर्गुण ब्रह्म है उस वास्तविक ब्रह्म के शरण हो जाने को कहते हैं गीता में अहं, अर्थात् मैं माम् अर्थात मुझे मया अर्थात् मेरे इन शब्दों का प्रयोग जहाँ हुआ उनके निर्गुण ब्रह्म स्वरूप के अर्थों में हुआ है। गीता अध्याय 4 श्लोक 13

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः
तस्य कर्तारमपि मां विद्धय कर्तारमत्ययम।।

अर्थ–ऽ तथा हे अर्जुन! गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं उनके कर्त्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्त्ता ही जान। गीता अध्याय 5 श्लोक 29

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

अर्थ- सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थ रहित प्रेमी (आत्मा) ऐसा तत्त्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है अर्थात् सच्चिदानन्द घन परिपूर्ण शान्त ब्रह्म के सिवाय उसकी द्रष्टि में और कुछ भी नहीं रहता केवल वासुदेव ही वासुदेव रह जाता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 30

यो मां पश्चति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

अर्थ- जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्म स्वरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अर्न्तगत देखता है उसके लिए मैं अद्रश्य नहीं होता हूँ क्योंकि वह मेरे में एकीभाव से स्थित होता है। गीता अध्याय 7 श्लोक 13

त्रिभिर्गुणमयैर्भावेरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभयः परमव्ययम्।।

अर्थ- किन्तु गुणों के कार्य रूप सात्विक राजस और तामस इन तीनों प्रकार के भावों से यह सब संसार मोहित हो रहा है इसलिए इन

तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता।

गीता अध्याय 8 श्लोक 13

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमांगतिम्।।

अर्थ- जो पुरुष ॐ एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ रूप मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 9 श्लोक 13

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः।
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।

अर्थ- परन्तु हे कुन्ती पुत्र दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्मा जन है वे तो मेरे को सब भूतों का सनातन कारण और नाश रहित अक्षर स्वरूप (नक्षरते इति अक्षरः) जिसका कभी नाश नहीं होता है। जानकर अनन्य मन से युक्त हुए निरन्तर भजते हैं। भजन क्या है? ब्रह्मात्मैक्य द्रष्टि ही उनका अखण्ड भजन है। न कि राम राम कृष्ण-कृष्ण या शिव-शिव उच्चारण करना।

गीता अध्याय 10 श्लोक 3

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्व पापै प्रमुच्यते।।

अर्थ- जो मेरे को अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्म रहित और अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्त्व से जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।

गीता अध्याय 11 श्लोक 4

योगेश्वर ततो मे त्वंदर्शयात्मानमव्ययम्।

अर्थ- हे योगेश्वर आप अपने अविनाशी स्वरूप का दर्शन कराइये। **'यत्र-यत्र द्रश्यत्व तत्र-तत्र मिथ्यात्व'** आत्मा मन वाणी का विषय नहीं ज्ञान किसे होता है ? बुद्धि वृत्तियों का आत्मा के साथ तादात्म्य होने से बुद्धि वृत्तियों में ब्रह्माभिन्न व्याप्ति हुई है बुद्धि वृत्त्यिां व्याप्य हुई आत्मा व्यापक हुई बुद्धि हेतु है। अयोगोलक आत्मा ज्ञाता है बुद्धि वृत्तिया विषय है इस प्रकार ज्ञात्वेन आत्मा को जाना जाता है विषयत्वेन नहीं।

गीता अध्याय 12 श्लोक 9

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।

अर्थ- हे अर्जुन! अभ्यास रूप योग के द्वारा मेरे को प्राप्त करने के लिए इच्छा कर। श्रीकृष्ण तो सामने खड़े हैं अर्जुन के और मेरे को प्राप्त करने की इच्छा कर यह अजन्मा अविनासी निर्गुण ब्रह्म के लिए संकेत हैं।

गीता अध्याय 13 श्लोक 2

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषुभारत
क्षेत्रक्षेत्र ज्ञयो र्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।

अर्थ- और हे अर्जुन! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मेरे को ही जान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का अर्थात् प्रकृति का और पुरुष का जो तत्त्व से जानना है वह ज्ञान है ऐसा मेरा मत है।

गीता अध्याय 14 श्लोक 2

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्य मागताः।
सगेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यर्थान्त च।।

अर्थ- हे अर्जुन! इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात् धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलय काल में व्याकुल नहीं होते हैं क्योंकि उनकी द्रष्टि में मुझ वासुदेव से भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं।

गीता अध्याय 15 श्लोक 15

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वैद्यो वेदान्त कृद्वेद विदेव चाहम्।।

अर्थ- और मैं सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मेरे ही से स्मृति ज्ञान अपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य तथा वेदान्तकर्त्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

गीता अध्याय 16 श्लोक 18

अहंकार बल दर्प कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्सूयकाः।।

अर्थ- तथा वे अहंकार बल घमण्ड कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।

गीता अध्याय 17 श्लोक 6

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूत ग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान्

अर्थ- तथा जो शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय को और अन्तः

करण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को कृश करने वाले हैं उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान।

गीता अध्याय 18 श्लोक 55

भक्त्या मामभिजानाति यावन्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतोज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।

अर्थ– और उस परा भक्ति के द्वारा मेरे को तत्त्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूँ उस भक्ति से मेरे को तत्त्व से जानकर तत्काल ही मेरे में प्रवेश हो जाता है अर्थात् अनन्यभाव से मेरे को प्राप्त हो जाता है फिर उसकी दृष्टि मुझ वासुदेव के सिवा और कुछ भी नहीं रहता।

10 शंका– श्रीपाद आद्य शंकराचार्य जी ने भी अपने नृसिंह तापनी भाष्य में स्वीकार किया बताते हैं

'मुक्त' अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्त भजन्ते।

मुक्त जीव गण भी देह धारण करके भगवान का भजन करते हैं।

'मुक्ता अपि हि एनम! उपासते'

यह सौपर्णा श्रुति का वाक्य बताया जाता है इससे तो सगुण उपासना का आनन्द ब्रह्म की उपासना के आनन्द से श्रेष्ठ ही प्रमाणित होता है।

समाधान– आपके इन शब्दों के उत्तर में इतना लिखना पर्याप्त होगा कि प्रथम तो 'स्वीकार किया बताते हैं' आप के ये शब्द स्वयं संशयात्मक है। दूसरे मुक्त पुरुषों का भजन क्या है? इसको आप

समझ नहीं सकते। वास्तव में ब्रह्मात्मैक्य द्रष्टि ही उनका अखण्ड भजन है न कि राम-राम या कृष्ण-कृष्ण या शिव-शिव उच्चारण करना। तीसरे जो आद्य शंकराचार्य जी महाराज भुजा ऊँची उठाकर यह ढिंढोरा पीट गये हैं कि न अष्टांग योग से, न साख्य योग से न कर्म से न उपासना से ही मोक्ष की सिद्धि सम्भव है किन्तु मोक्ष तो एक मात्र ब्रह्मात्मैकत्व बोध पर ही निर्भर है अन्य किसी प्रकार भी नहीं।

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्व बोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथा।।

❋ ❋ ❋ ❋